श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

श्रीकनकभवनविहारिणीविहारिणौ
विजयेतेतराम् ।

अथ

श्रीरघुवरगुणदर्पणः ।

श्लोकः ।

दिव्यानन्तगुणाम्भोधिं महामाधुर्यमण्डितम् ।
भक्तानामिष्टदातारं जानकीवल्लभं भजे । १ ।
वन्दे श्रीमद्गुरुं साक्षात् परमानन्दविग्रहम् ।
यत्कृपालेशतः पुंसां गोचरो रसिकाग्रणीः ।२।
प्रणम्य प्रीतिसम्पन्नान् रसिकान् गुणजीवनान् ।
जानकीजीवनस्याथ गुणान् वक्ष्ये यथामति ।३।
भक्तानाञ्जायते बोधस्त्वधिकन्निजभाषया ।
तस्मात् स्वभाषयेदानीं संकीर्त्यन्ते प्रभोर्गुणाः ।४।
वन्दे श्रीमधुराचार्यमार्यं सर्वगुणास्पदम् ।
योऽकरोज्जानकीजाने निर्मलं गुणदर्पणम् ।५।

वार्तिक हिन्दी।

सर्वविधस्नेह-(१) सुलभ श्रीजानकीबल्लभ जीके जो महा-माधुर्य-रसपागी बड़भागी अत्यन्त अनुरागी हैं, उनके मधुर मञ्जु वदनकञ्ज से वेश निदेश (२) पा अति आनन्दितचित्त हो श्री जानकीरमण-पदपङ्कज-परागाश्रित मैं (युगलानन्य शरण) श्री रघुनाथ जी के रहस्य के। अपने बुद्धिबल के अनुसार सार-संक्षेप करके वार्तिक हिन्दीभाषा में वर्णन करता हूं। जिन लोगों के हृदयकमल में श्रीरघुनाथ जी के बल और गुणों के श्रवणसुखास्वादन की वाञ्छा बनी रहती है, उनके लिये यह परम जीवनरूप संजीवनी जड़ी है। सज्जनों की समस्त संशय-निवारिणी श्रीअवधविहारी जी की गुणगणमयी कोर्तिनिचय-चन्द्रिका सदा एकरस बनो रहती है। इस ग्रन्थ में श्रीरघुनाथ जी के केवल गुणों के ही अनूप स्वरूप का निरूपण भलीभांति और सब प्रकार से कियाजायगा, क्योंकि भगवत्स्नेहियोंको विषादमय मतवादों से कुछ प्रयोजन नहीं। जब कि उन्हें श्री प्राणजीवन के नवल अमल रसमय यशगुण और नामों के कीर्तन से ही लवनिमेषार्द्ध अवकाश नहीं है, तो अन्य प्रकार को चर्चा उनके निकट कैसे होसकती है। अतएव इस ग्रन्थ

---

(१) स्नेह। यद्यपि स्नेह छोटों के प्रति बड़ों के प्रेम को कहते हैं, पर इस ग्रन्थ में स्नेह (सनेह) पद सबों के प्रति व्यवहृत है।

(२) निदेश = आज्ञा।

में श्रीरघुनाथ जीके केवल कमनीय गुणों का ही निरूपण किया जायगा।

यदि कहिये कि पहलेही गुणों के वर्णन से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? श्रवण, मनन और चित्तवृत्ति-निरोध करके यह करते तो ठीक होता, यहां उत्तर यह है कि भक्त जबतक श्रीगुरुओं के द्वारा अपने स्नेही इष्टमित्र रूपी प्यारे के मनोहर गुणों को यथार्थ नहीं जानता, तबतक स्नेह की दृढ़ता और ममत्व की अधिकता उसको अति दुर्लभतर है और जो भक्ति-कल्पलता उपजी रहती है वह भी भगवद्‌गुणरूपी मधुर रस सींचे विना नहीं बढ़ती। अतएव सर्वसाधनों की आशाओं को निरस्त कर श्रीरघुकुलावतंश जी के प्रशस्तगुणों का ही निरन्तर श्रवण मनन निदिध्यासन स्नेहियों को अवश्य ही करना चाहिये। (भगवद्‌गुणों का सम्बन्ध सब साधनों में रहना आवश्यक है।)

तीनों लोक में वह कौन है जो श्रीराजीवनयन जी के समस्त दिव्य भव्य नव्यातिनव्य गुणगणार्णव की थाह पासकता हो? कोई बुद्धिमान् भूमि के कणों को, तारागणों को वा जल के सीकरों को चाहे भलेही गिन डाले, परन्तु महाराजकुमार सरकार जी के गुणसमुदाय को सबप्रकार से कहने में श्रीहरिहरादिक भी असंख्य कल्पों में भी कहकर पार पाने में समर्थ नहीं होसकते, तो अन्य (मुझ सदृश) कीट पतंगों को

कौन बात है? तोभी अपनी अपनी रुचि और शुचि प्रेम-मति के अनुसार सब सज्जन वर्णन करते आये हैं, वैसेही मैं भी अपनी वाणी के सफलतार्थ और प्रीतिप्रेरित रसिकजन-प्रमोदार्थ श्रीरघुवरगुण निरूपण करता हूं। इसे सुनकर सज्जन जन रंज न हो अपना सम्बन्धी विषय विचार कर हर्ष पावैंगे और जो भगवद्गुणास्वादरहित हैं वे स्पर्द्धा भी करैंगे। पहले गुणों के नाम श्रवण करना चाहये तब पीछे उनके लक्षणों का मनन करना चाहिये।

श्रीचक्रवर्तिचूडामणि महाराजकुमार जी के गुण चार प्रकार के उदार हैं। एक तो विश्व के उद्भव स्थिति और पालन के लिये। दूसरे भजनोपयोगी। तीसरे आश्रित शरणो-पयोगी। चौथे दिव्य भव्य मङ्गलमय चिद्घन श्यामसुन्दर विग्रह के गुण सर्वोपयोगी हैं, विशेष करके अनन्य रसिकों के तो प्राणजीवन धन हैं। इन चारों गुणों के श्रवणीय अभि-राम नाम ये हैं :—(१) ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज ये छः गुण जिसमें हों, जो शरण्य हो, निरन्तर एकरस हो, वही भगवान सुखों की खान कहलाता है। और भी दो दिव्य गुण उनके परम ललित हैं। एक तो यह कि उनका नाम कभी त्यागने योग्य नहीं है, दूसरा विरोधिरहित और सर्वदा अख-ण्ड होना। उक्त ये आठोंगुण सृष्टिके कारणभूत हैं।

(२) सत्य ज्ञान अनन्त एकत्व विभुत्व अमलत्व स्वा-

तन्त्र्य और आनन्द। ये गुण परम वेदान्त-सिद्धान्तमय हैं, ये यद्यपि भजनकरनेवालों के परम जीवन हैं, किन्तु केवल उन्हीं के कि जो परम निष्काम हैं और जिन्हें केवल स्वरूप-बोध से प्रयोजन है।

(३) दया कृपा अनुकम्पा आनृशंस्य वात्सल्य सौशील्य कारुण्य क्षमा गाम्भीर्य औदार्य्य स्थैर्य धैर्य चातुर्य कृतित्व कृतज्ञत्व मार्दव आर्जव सौहार्द इत्यादि श्रीरघुनाथ जी के अन्तःकरण के गुण हैं, जो आश्रित शरणागतों के पोषक, रक्षक और परमसौलभ्यप्रतिपादक हैं। इन गुणों के अनु-सन्धान से आश्रितजन अत्यन्त शीघ्र और अवश्य ही श्री प्राण-वल्लभजी को प्राप्त करते हैं।

(४) सौन्दर्य, माधुर्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य, औज्ज्वल्य लावण्य, रूप, कान्ति, तारुण्य इत्यादि अनुपम मधुर रसालय गुण नित्य के परिकरनिकर* और रसिक मुमुक्षुओं के चिन्तन-करने योग्य हैं, जिस से ये मनोहर गुण समस्त इन्द्रियविषयों के सहित मन की चञ्चलता को अनायासही हरलेते हैं, इसी-प्रकार श्रीमहाराज रघुनन्दन जीके गुण एक से एक अनूठे सुख-सागर उदार और अनन्त रसवन्त हैं। जैसे कोई प्रबल जन रत्नों के नगेन्द्र पर चढ़े तो अपनी शक्ति के अनुरूपही उठा-वेगा समस्त तो ले नहीं सकेगा, ऐसे ही मनोहर दिव्य गुण-मयी मूर्ति जानकीप्राणप्रियजी को है। जिसकी जितनी ही

---

* परिकर निकर=पार्षदगण।

बल-बुद्धि है, वह उतनाही ग्रहण करता है। जो सहज निष्काम आत्माराम और मननशील श्रीरामानुरागी मुनिवर्य हैं, वे भी श्रीमनहरण जीके गुणों से ऐसे वशीभूत हो जाते हैं, कि निरन्तर एकरस अनुचर के समान बने रहते हैं। ऐसा कौन अभागा आत्मघ्न होगा जिसको ये रंगीन गुण निश्छलभाव से नहीं सुहाते हों ?

श्रीजानकीबल्लभजी में देह-देही-विभाग करना परम अभागापन है। जिनको उस माधुरी का स्वाद नहीं मिला है वेही अज्ञ ऐसा विभाग करसकते हैं। श्रीजानकीरसिक जी के समस्त-गुण, स्वर्गस्थ चिन्तामणि कामधेनु और सुरतरु के भी निरादर करनेहारे, अभीष्टदायक और सुखदायक हैं; कोई गुण न्यूनतासम्पन्न नहीं, सभी विलक्षण और एकसे एक हैं। अन्य-ग्रन्थमत और वाद-विवाद त्यागकर केवलगुण-नाम-सुधा-स्वादन ही स्नेहियों का कर्तव्य है।

लक्षणसहित गुणनिरूपण।

पहले सकल जीवनिस्तारिणी स्ववशविहारिणी विशेष-विजया दया के विलक्षण गुण वर्णन करताहूं, वह श्रवण कीजिये। अशंक अकलंक धर्मरूपी पर्यङ्क* के चार चरण हैं। उनमें से दया पहला चरण है। दीन-हितकारिणी दया से हीन

* पलंग।

समस्त साधनों के गुण व्यर्थ और अनर्थमय होते हैं, अतएव उस दया के स्वरूप का अनूपभांति से वर्णन करताहूं। दया का सार-सिद्धान्त और विलक्षण लक्षण यह कहाजाता है कि "विना स्वार्थ के ही जीवमात्र के निरन्तर मोद-विनोद को क्षण क्षण सब प्रकार से चाहना, ऐसी जो श्रीमहाराजकुमार की अनूठी चित्तवृत्ति वही जागती गरजती हुई दया कहलाती है। उदासीन अरि मित्र इन में करुणा रखनी यह भी दया है।

यदि कहो कि यदि श्रीरघुनन्दन जी सबों पर दया करते हैं, तो करोड़ों जीव दुःखी क्यों देखे जाते हैं। यहां उत्तर यह है कि आप की शंका सत्य है परन्तु यहां भेद इतना ही है कि जो सरकार के विविध भांति से अनन्य भक्त हैं उन पर तो उनके स्नेहानुसार दया विशेष-बन्धननिवारिणी होती है और अन्यों पर इन्द्रिय शरीर दानादि द्वारा सामान्य रीति से निरन्तर बनी रहती है। यदि ऐसी न हो तो वेद की मर्यादा मिट जाय। अतएव सरकारी दया अधिकारानुगुण सबों पर होती है। 'देङ् पालने' धातु से दया पद सिद्ध होता है। दया-गुण के विचारने से श्री महाराजकुमार जी जीवमात्र के आधार सिद्ध हुए, जो सब के आश्रय हैं। अतएव यह स्वारस्य स्पष्ट हुआ कि श्री सर्वेश्वर जी स्वतन्त्र हैं और जीवमात्र पराधीन हैं। इस से भी यह भाव निकला कि पूजित सर्वेश्व रेश्वरजी अन्तर्यामी रूप से शरीरी हैं और सब जीव

शरीर हैं। इस से भी यह भाव प्रकाशित हुआ कि जैसे शरीरी शरीर का रक्षणपोषण प्रसिद्ध यत्नों के बिना ही किया करता है, वैसे ही उभय लोक में मेरी रक्षा सरकार अवश्य करेंगे इस में संशयलेश भी नहीं यह दृढ़ विश्वास खास सुखरास हुआ। अब श्री सद्गुरुओं के कृपाकटाक्ष से हम लोगों को इस अनुसन्धान से निर्भयत्व और चिन्तारहितत्व सब प्रकार से प्राप्त हुआ। अतः रे मन, तू चिन्ता त्याग कर श्रीजीवनप्राण जी के भजन-स्मरण में बारवार अनुदिन सप्रेम मगन रह। उभय मूर्तियों का दया-गुण तो अपार है, परन्तु मैं ने उसी प्रभु की इच्छा से निज बोधमोदार्थ कथनमात्र निरूपण किया है।

दोहा।

दया दयानिधि की बिशद, जौ लौं हृदय न भास।
तौ लौं चिन्तासहित मन, निस दिन रहित हुलास॥

इतिश्री युगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक-प्रबन्धे रघुवरगुणदर्पणे दयागुणप्रदर्शनं नाम प्रथमोऽध्यायः। १।

——:*:*:——

अब अतीव कमनीय काम-कलंक-शमनीय रमणीय द्वितीय कृपागुण का वर्णन करता हूं। अनुपम कृपागुण का परम लक्षण यही है कि सर्वेश्वर श्रीजानकी-वल्लभ जी का जो

इस प्रकार का सन्तत एक रस अनुसंधान है, कि मैहीं सब प्रकार से सब जीवों का रक्षक हूं दूसरा नहीं। यही कृपा-गुण है। अथवा अपने सामर्थ्य के अधीन जीवों के बन्धन-मोक्षादि कार्य्यों को मन ही से जानना, यही कृपागुण सरकार का वेदविदित है। स्वर्ग नरक मुक्ति आदि सब श्रीराघव जी के अधीन हैं। उनका यह कृपागुण मुख्य है। अर्थात् जो वस्तु बड़े बड़े साधनों से अतिश्रम से घुणाक्षरन्याय से प्राप्त होती है, वही पदार्थ केवल श्रीकोशलेश्वरकुमार जी के कृपाकटाक्ष से अनायास सविलास प्राप्त हो जाती है। श्री रघुनन्दन जी की कृपा से सद्गुरु और सत्शास्त्र का लाभ होता है फिर उनके सत्सङ्ग से नया रंग चढ़ता है। जहां जहां जिस जिस काल में श्रीजानकीवल्लभजी ने स्नेहियों की रक्षा की, वह केवल कृपागुण से ऐसा जानना चाहिये।

श्रीरघुनन्दन जी के एक २ गुण के श्रवण मनन से समस्त गुणों की झलक हृदय में पड़ती है यह विलक्षणता है। जैसे रत्नों की अनूठी माला में सब रत्न होते हैं, मधु में सब रस होते हैं, तीर्थराज में सब तीर्थ रहते हैं, वैसे ही और गुण भी इस में परस्पर मिले हुए हैं। श्रीरघुनन्दन जी को सब गुणों से अत्यन्त प्रीति है और सबों से प्रयोजन रहता है, व्यर्थ एक भी नहीं है। सर्वज्ञता समर्थता आदि सब गुण आप में जीवों के

लिये हैं। शौर्य वीर्य आदि गुण उनके अनिष्ट-निवारण-पूर्वक उन के परम इष्ट को देने वाले हैं, अतः सब गुण मङ्गलमय हैं। ऐश्वर्यगुणश्रवण से उत्पन्न हुई भी भक्ति संकोच को प्राप्त होती है। ऐश्वर्य यह कि सदा मन-वाणी के परे दुष्प्राप्य दुस्तर्क्य विधि-हरिहरादि-दुर्लभ और अचिन्त्यादि विशेषण केवल स्नेह के न्यून करनेहारे हैं, विशेषतः पहले-पहल सामान्य प्रेमियों को। अतएव सौलभ्य-प्रतिपादक दयादिगुण प्रीतिमानों के निरन्तर भावनीय हैं। श्री प्राण-वल्लभ जी के वात्सल्य सौशील्य आदि गुण श्रवणमात्र से मधुधारावत् अनवच्छिन्न स्नेह बढ़ता है जिस स्नेह का नाम भक्ति है।

श्रीनारद अगस्त्यादिकों की सत्सम्मति से कैसा स्नेह करना चाहिये वह सुनिये। उपास्य का स्वभाव और स्नेहमय महत्व भली भांति जानकर सुदृढ़ और सबसे अधिक ममता-स्पद निष्काम अष्टयाम सेवन ही उत्तमा भक्ति है, इसीसे श्रीप्राणजीवन वशीभूत होते हैं, जिससे सभी झंझट छूट जाती है, संसृति तो अवान्तररूप से अनायास छूट जाती है। इस उत्तम स्नेह को ज्ञान वैराग्य आदि साधनों की अपेक्षा नहीं होती, यह जीवों को कृतार्थ करने में परम स्वतन्त्र है। उक्त सभी वस्तुएं श्रीरघुनन्दन जीकी कृपाधीन हैं।

श्रीजानकीवल्लभ जो की कृपा के अनुसन्धान से हम

सबों को क्या लाभ होता है, वही अब कहाजाता है, चित्त-देकर सुनिये। परम कृपाल नतपाल परम समर्थ-गुण-सम्पन्न परमेश्वर भक्तों के समीप सबकाल स्थित हैं, तो हमें मुक्ति वा अन्तराय-निवारणादि की क्या चिन्ता है? सर्वदा कृपा-बलसे तन्मय रहना और अनालस्य हो रूप गुण नामामृत पान करना, यही जीवन का परम लाभ है, रे लोलुप मन! यह भली भांति विचार।

दोहा।

कृपासिन्धु आरतिहरन, सरनपाल रघुलाल।
सब प्रकार समरत्थ प्रभु, तू तज चिन्ता जाल॥

इति श्री श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते रघुवरगुणदर्पणे हिन्दी-भाषावार्तिक-प्रबन्धे कृपागुणवर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः।२।

—:*:*:*:—

अब श्रीजानकी-जीवन-पदपङ्कज-पराग की करुणा से अनुपम अनूठे तृतीय अनुकम्पागुण का वर्णन करता हूं, जो आश्रितों को सुधासम जिलानेवाली संजीवनी जड़ी है।

शरणागत-पाल श्रीरघुलाल का ऐसा जो दिव्य संकल्प है कि जो स्नेही हमारे द्वारा रक्षित हैं उन के नाना प्रकार के सुख-सार अभिलाषों को फिर अनुरागसहित पूर्ण करना, यही श्रीअनुकम्पागुण का लक्षण है। इसी में प्रभु का अचल और

एकरस सहज स्नेह रहता है, यही अनुकम्पागुण है और यह परम प्रयत्न से प्रेमियों को प्राप्त होता है। जो निर्वैर और समदर्शी महात्मा अनुक्षण श्रीरघुनन्दन-गुण मनन करते तथा सब ओर से शान्तचित्त तथा उन के परम प्रेमी हैं, उन के पदपराग के लिये आप सर्वेश्वर पीछे फिरे फिरते हैं और जनसुखसदन निज बदन से कहते हैं कि इन की चरण-धूरि हमारी पावनकारिणी है। कुछ नयन उघार कर देखो तो कि प्रियतम का वचन कैसा विचित्र स्नेहमय है! यदि सरकार पावन हैं तो उन के संग अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं वे भी पवित्र हुए; इस से बढ़ कर विशेष सन्तों को क्या होगा? अतएव सन्त-पदपराग में छल छोड़ कर अत्यन्त स्नेह करना चाहिये। इस कथन में यह सार है कि ऐसे स्नेह-रस-सागर प्राण-जीवन के सिवा अन्य से प्रीति करना अत्यन्त अनुचित है। भक्तों के हृदयस्थ जितने प्रकार के अविद्यादि तम होते हैं वे केवल प्रभु के कृपा कटाक्ष रूपी अनुकम्पा से विना साधन के ही अनायास ही नष्ट होजाते हैं। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अरण्य-काण्ड आदि में बहुत ठौर यह गुण विदित है, सो बिचार लेना। इस गुण के अनुसन्धान और अनुकम्पा से यह विचित्र लाभ हुआ कि जैसे लोक में एक दो वार स्वामी रक्षा करते हैं, फिर त्यागते हैं, वैसेही सरकार भी करते

होंगे, इस सन्देह का अत्यन्ताभाव हुआ और यह दृढ़ निश्चय हुआ कि हमें श्रीरघुवंशमणिजी कभी न भूलेंगे न त्यागेंगे। श्रीसीताकान्तजी का यह स्वभाव है कि दो बाण धारण और दो वार वचनउच्चारण यह किसी अन्य कारण से करें तो करें, पर दो बार आश्रितों का स्थापन और दो वार एक अर्थी को दान देना, ये बातें स्वप्न में भी वह नहीं होने देते। तो हम सबों के भी सब अपराध बिसार, अनायास अवश्यही अपनावेंगे और नीति गुण बिचार कर बिना प्रार्थना के ही द्रवेंगे।

दोहा।

प्रथम कृपा करि कर गहैं, पुनि न तजैं निज जान।
अनुकम्पागुन इन्ह नवल, जुगलानन्य बखान॥

इति श्री युगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे रघुवरगुणदर्पणे अनुकम्पागुणप्रदर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः।३।

—:*:०:*:—

अब करुणासिन्धु दीनबन्धु श्रीरघुकुलावतंसजी का अतिकमनीय तर करुणागुण वर्णन किया जाता है। इस मनोहर करुणागुण का यही अनुपम लक्षण है कि अपने स्नेहियों के दुःखरूप अनल के ताप से अर्थात् वह दुःख असह्य होने से,

मधुर मनमोहन जीवनधन श्रीरघुनन्दनजी का अत्यन्त कोमल मन माखन के समान द्रवीभूत हो जाता है; श्रीदशस्यन्दन *प्राणप्रियजी यों तो सब के दुःख में दुःखी होते हैं, किन्तु विशेषतः स्नेहियों के दुःख से दुखी होते हैं। उन का यह स्वभाव ही पड़ा है कि आश्रितों के दुःख तनिक भी सुन पड़ने से उन्हें उद्वेग के साथ पीड़ा होती है और ऐसा मनहरण वचन उच्चारण करते हैं कि क्या करूं कहां जाऊं, किस से कहूं, जिस से मेरे प्राण जीवन भक्तों का अत्यन्त क्लेश निवारण हो।

यद्यपि सरकार परम स्वतन्त्र हैं, तो भी करुणा (दया) के वश हो सामान्य जीवों के समान विह्वल हो जाते हैं। यही अनूठी ईश्वर की करुणा है, जो केवल श्रीकोशलेशकुमार में नित्य पाई जाती है, औरों में कभी कभी बहुत थोड़ी। करुणा (दया) से अपराधियों के अपराध भी शान्त होते हैं, इस से करुणावान के शरण होना चाहिये। जब तक स्नेहियों के दुःख रहते हैं तब तक सत्वगुणी भगवान आप दुखी होते हैं, उन को प्रथम सुखी कर के पीछे आप परम हर्ष को प्राप्त होते हैं। यह रहस्य श्रीमद्रामायण में सुग्रीवादिकों के प्रसङ्ग में स्पष्ट जानना।

मनुष्य क्रूर से क्रूर वा विषयरसचूर भी हो, पर एकवार आर्तिसहित शरण में आकर यदि कहे कि हमारी रक्षा कीजिये

* दसस्यन्दन=दशरथ।

तो प्रलम्ब भुज उठा कर स्नेह संयुक्त तुरन्त उसे अङ्गीकार करते हैं। करुणा का स्वरूप निरूपण और कहां तक किया जाय, स्नेहियों की आगामी वेदना समझ कर वह सखेद हो जाते हैं। सरकार सहज सुकुमार और स्वाभाविक करुणावान् हैं। यह परम मनोहारिणी करुणा यद्यपि आर्त आश्रित मात्र के ऊपर होती है और सब आश्रित इस के अधिकारी हैं, परन्तु विशेषतः कृपा (करुणा) के पात्र वे ही हैं जिन के सब कालमें एकरस नीचानुसन्धान और मन-वचन में अव्यवधान दीनता बनी रहती है। वे ही करुणा के अधिकारी हैं। जो अपने को तृण से भी नीच जानते हैं, तरु से भी बढ़ कर मानापमान-रूपी शीत उष्ण सहते हैं और सबों को मान आदर देते हुए आप अभिमानशून्य रहते हैं, वे ही सब गुणों के भाजन हैं।

किसी किसी ने श्रीजानकीजीवनजी की करुणा को अविचार के कारण न्यून कहा है। यह समझकर कि परेश में करुणा कहना अशोभित (युक्तिसंगत नहीं) है परन्तु ऐसा कहना अनुचित है। श्रीरघुवंशमणि में तो करुणा ऐसी शोभती है कि जैसे चन्द्रमा में सुधा, नेत्र में पुतली, पुष्प में सुगन्ध, रत्नमें झलक, ऐसी ही जनसुखस्वादवर्द्धिनी करुणा परेश में रहती है। यदि करुणा न रहे तो परेश का स्वरूप पाषाण सम (नीरस) हो जाय, और केवल बड़ाईमात्र रूक्षता शेष रह-जायगी। श्रीजानकी-वल्लभजी का यह एक प्रबल स्वभाव है कि

कैसाही अपराधी क्यों न हो, शरण में लेनेपर उसे आत्मीय विचारकर फिर उसका अपराध सुखसारसरकार स्वप्न में भी नहीं देखते ऐसी प्रतिज्ञा वाल्मीकीय रामायण में बहुत ठौर है। इस प्रकार करुणा के श्रवण से यह विश्वास दृढ़ हुआ कि हमारे भावी दुःखादि अनिष्टों को सरकार बेपरिश्रम दूर करेंगे, और हम निश्चिन्त हो छल-क्षोभ छोड़ भजन करेंगे; वह हमें अपना जानकर आपही करुणा के सम्बन्ध से निज परात्पर पद में प्राप्त करेंगे ; अतएव परेश में करुणागुण अवश्यही होना चाहिये। करुणा न हो तो श्रीरघुराज महाराज की समस्त बड़ाई व्यर्थ हो जाय, इस से करुणा की अपेक्षा आवश्यक है।

निर्विकार श्रीरघुनन्दनजी में अश्रुपातादि कैसे सम्भव है, इस का उत्तर सुनो। श्रीरघुकुलावतंसजी में और भक्तों में परस्पर आलम्बनोद्दीपन भाव रहता है, अर्थात् श्रीरघुनन्दनजी स्नेहियों के विषयावलम्बन हैं और भक्त श्रीरघुनन्दनजी के विषयावलम्बन हैं। श्रीजानकीवल्लभजी के सौन्दर्य माधुर्य करुणादि भक्तों के उद्दीपन हैं और स्नेहियों की प्रीति प्रतीति सत्य समतादि श्रीरघुनन्दनजी के उद्दीपन हैं। भक्तगण श्रीरघुनन्दन के माधुर्यगुण के आश्रयावलम्बन हैं और श्रीरघुनन्दनजी भक्तजन-प्रीत्यादि गुणों के आश्रयावलम्बन हैं।

आठ स्थायी और आठ सात्विकभाव (भक्त और भगवान्)

दोनों में पूर्णरूप से रहते हैं । रति हास शोक क्रोध उत्साह भय जुगुप्सा और विस्मय ये स्थायी भाव हैं, इन्हीं के साथ सात्विकादि के मिलने से रस उत्पन्न होते हैं । स्तम्भ स्वेद रोमाञ्च स्वरभंग कम्प वैवर्ण्य अश्रु और प्रलय ये आठ सात्विक भाव हैं । ये अन्तःकरण के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं । इसीप्रकार तेंतीस व्यभिचारी भाव भी हैं, जिनमें से दशपांच वा दोचार समय समय पर प्रायः हुआकरते हैं । निर्वेद विषाद दैन्य ग्लानि श्रम मद गर्ब शंका त्रास उन्माद अपस्मृति मोह मृत्यु आलस्य जाड्य लज्जा स्मृति अवहित्था वितर्क चिन्ता मति धृति हर्ष औत्सुक्य औग्र्य अमर्ष चापल्य निद्रा सुप्ति जागरण आवेग व्याधि असूया ये ही ३३ व्यभिचारी (सञ्चारी) हैं, जो सब रसों में कुछ कुछ रहाकरते हैं । ये श्रीरसराजजी में पूरे रूपवान रहते हैं, इनके यद्यपि अनेक भेद हैं पर यहां संक्षिप्तही कहे गये ।

ये सभी लक्षण (प्रेमी प्रेमपात्र) दोनों में रहते हैं, जिस से अश्रुपातादिक उचित है और श्रीरघुनन्दनजी सिद्धोपायरूप हैं, जिनके लीलारूपी ललित प्रवाह से अनेक पापादि दुर्वासनारूपी सेतु अनायासही बहजाते हैं । इसगुण के विविध अमल फल हैं जो अनुसन्धानकर्ता को प्रत्यक्ष प्राप्त होते हैं; विशेष तो यह मुख्य मनोरम फल है कि श्रीरघुनन्दनजी रक्षक और भक्त रक्ष्य हैं, यह हृदय में पत्थर की लकीर की भांति दृढ़

प्रतीत हुई । यही सार फल है और उपास्यको ओर की निष्ठु-
रता भी निवृत्त हुई ।

दोहा ।

दुखी सनेही पीरतें, सुखी सनेही मोद ।
यह करुनागुन सुनि समुझि, जुगलानन्य विनोद ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते श्रीहिन्दोभाषावार्तिकप्रब-
न्धे रघुवरगुणदर्पणे करुणागुणवर्णनो नाम चतुर्थो ऽध्यायः ।४।

—:*:*:*:—

श्रीजानकीविहारीजी के कृपाकटाक्षकोर से मनोहर
पञ्चम गुण आनृशंस्यनामक वर्णन किया जाता है । प्रशस्य
आनृशंस्य का यही अनूठा और रंगदार लक्षण है कि स्वप्न में
भी चित्तसे परदार परधन हरण परद्रोह परापवाद नहीं करन
और जो दण्डनीय हों उनको यथोचित दण्ड न देना, और
शत्रुओं को भी विशेष उपदेश एवं उनके क्षेमार्थ हित करना
यही अपूर्व आनृशंस्य गुण है, जो केवल श्रीमहाराजकुमार
जी में पायाजाता है, अन्य स्वरूपों में वैसा यथार्थतः नहीं ।
श्रीरघुराज जी ने समस्त सभा के मध्य भुज उठा जनसुखसदन
श्रीवदन से निश्शंकरूप से इसप्रकार सुघोष किया कि विभी-
षण हो वा रावण हो सादर और संशय छोड़ उसे ले आओ,

वह मेरा परमप्रिय है। इसीप्रकार अनेक वचन श्रीरामायण के अन्तर्गत हैं जो उपासकों के गम्य हैं।

श्रीस्वामिनी जी ने भी शरणागतपालक वचन श्रीहनुमानजी से सुन्दरकाण्ड में कहा है कि समस्त जीवमात्र ही अपराध के भाजन हैं परन्तु महात्मा को करुणा करना ही धर्म है, अतः राक्षसीगण वधयोग्य नहीं किंच रक्षणीय हैं, क्यों कि ये मेरो निकटवासिनी हैं। श्रीरघुनन्दनजी ने तो एक विभीषण के शरण लेने में सभा रचकर सब से पूछ पाछ किया था और वह (विभीषण) भी मित्रभाव से भली विधिसे मिले थे, परन्तु श्रीजानकी जी में विचित्र और पवित्र शरणागतपालकत्व धर्म पायाजाता है। यह विचारने की बात है कि एक तो नारी वेदानधिकारिणी, उसमें भी राक्षसी, उसमें भी अत्यन्त विरोधिनी, उसपर भी श्रीस्वामिनी जी ने अलौकिक और परम स्नेह किया। इससे श्रीस्वामिनीजी में श्रीरघुनन्दनजी से भी अधिक वत्सलता सिद्ध है, यह दृढ़ निश्चय करके जानना चाहिये। इस (आनृशंस्य) गुण के अनुसन्धान से यह लाभ है कि श्रीयुगलसरकार शरणसम्बन्ध विचारकर अत्यन्त असह्य और हमसबों के निरन्तर असाध्य अपराधों को भी अवश्य दूर करेंगे और भलीभांति अपनावेंगे, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। आनृशंस्यगुण के श्रवण मनन से यह अनूप फल प्राप्त हुआ।

दोहा:-

आनृशंस्य परमोद घन, गुनि सुनि मन अति धीर।
सहज बिहाय अशेष भय, भजु श्रीपद रघुबीर ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते श्रीरघुवरगुणदर्पणे हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे आनृशंस्य-गुण-प्रदर्शनं नाम पञ्चमोऽध्यायः । ५ ।

—:*:*:*:—

भुवनभूषण श्रीमहाराजसूनु के अदूषण अनुक्रोशगुण का निजमतिवैभवानुसार वर्णन किया जाता है। अनुक्रोश का यह विलक्षण लक्षण है कि निज सम्बन्धसंयोग से यदि स्नेहियों को कुछ पीड़ा प्राप्त हुई वा और किसी प्रकार, तो वारवार स्मरण कर कर के अताप हृदय में पश्चात्ताप होना, यही सुखकोश अनुक्रोशगुण अनुपम स्नेहियों को परम मोदप्रद जीवनाधार और अनुग्रहहेतु है। इस गुण के स्वरूप के प्रतिपादक श्री कोशलेशकुमार जी के मधुर वचन श्री अयोध्याकाण्डादि में प्रमाणरूप बहुत हैं। भक्तचित्त-चन्दन श्रीरघुनन्दन जी ने कहा कि श्री महारानी महाराज [माता पिता] का वियोगदुःख हमारे लिये अतिशय गात्रदाहक और अकथनीय है, और भी मित्रारिजनादिकों का इसी भांति विचारना। इस दिव्यातिदिव्य अनुक्रोश गुण श्रवण से यह सन्तोष भरोसा और चेत प्राप्त हुआ कि हा ! ऐसे सुशील

सर्वगुणसम्पन्न प्रभु के पदपङ्कजों को छोड़ वृथा इतने दिन आंवबांव निन्दा स्तुति करते गंवाये और यथार्थ स्वादसुख तनिक न पाया, जिस से वारवार हमें धिकार है। मेरे समान पामर अधम खल दुष्टसिरताज कृतघ्न-राज कोई न हुआ न होगा, न है; जिस कारण हम ने तुच्छ फोकट नेह-नातों में मिल कर ऐसे स्नेहसागर को बिसार दिया। अब तो आज से क्षणमात्र भी श्रीजानकीवल्लभ जी के गुणगण नामादि का विना चिन्तन किये अन्य कार्यों को हलाहल के समान जहर मान कर त्याग देंगे; जो बीता सो बीता अब अनर्थ कार्य में व्यर्थ नहीं बीतेगा। अब संसाररूपी दावानल के ताप से निकल कर केवल मधुर रसमय अनूप शीतल स्वरूप का छल-कपट छोड़ स्मरण करेंगे, यही जीवन का अमल फल है।

दोहा:-

निजजन पीर अधीर है, सुमिरत श्री रघुबीर।
इहौं सुभग अनुक्रोस गुन, सब प्रकार गम्भीर ॥

इति श्रीयुगलानन्य-शरण-विरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे अनुक्रोशगुणवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६।

—:*:*:*:—

अब परममंगलायतन सगुण श्रीजानकीजीवन का दमगुण वर्णन किया जाता है। दुर्जय इन्द्रिय रूप दैत्यगण वा सघन वन को भली भांति जीतना

वा नाश करना ही दम गुण का सुन्दर लक्षण विचक्षणगण वर्णन करते हैं । इस गुण के अधिकारी दो हैं, (जिनका यह अपेक्ष्यहै) एक मुमुक्षु दूसरा नवीन योगी । श्रीरघुनाथ जी के परेशपूज्य पादपङ्कज में तो दोनों अधिकारों का अभाव है, अतः मारजित् * श्रीराजकुमार जी में लक्षण कर के हृषीकेशत्व+ सूचित किया । दम पद इन्द्रियजयपरक है, अतएव हृषीकेश नाम सिद्ध हुआ । करोड़ों राजकन्या और गन्धर्व-देव-किन्नर कन्याओं के साथ रमण और हासविलास करने पर भी श्रीनायक शिरोमणि वशीभूत नहीं हुए किन्तु अपने ही वश में उन को किया, अतः दमगुण स्वाभाविक और एकरस है, क्योंकि श्रीरघुकुलावतंस जी परदारस्पर्श वा परदारावलोकन स्वप्न में भी नहीं करते । इस गुण के अनुसन्धान से अनायास ही जितेन्द्रियत्व का लाभ हुआ । आचार्यों ने जिन इन्द्रियों के निरोध के लिये कठिन और असाध्य अनेक योगादि साधन निरूपण किये हैं, उनका लाभ, बिना यत्न के ही श्रीरघुनन्दन जी के दमगुणानुसन्धान से होता है । तो भी अभागों की रुचि इस गुण में तनिक नहीं होती, जिस से वे अनेक संसृति [जन्मग्रहण] के दुःख सहते हैं ।

---

* मारजित=कामदेव के जीतने वाले ।+हृषीक=इन्द्रिय । ईश=स्वामी । हृषीकेश=इन्द्रियों के स्वामी ।

दोहा।

दम दुर्जय-इन्द्री-दमन, समन सकल सन्ताप।
युगलानन्य-सरन भजु, निसदिन गुनगन थाप॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे दमगुणवर्णनो नाम सप्तमोऽध्यायः।७।

----:*:*:*:----

अब श्रीसार्वभौम-सूनुजी का अनुपम शमगुण यथा-श्रुत निरूपण किया जाता है। प्रबलतम महारिपु मन को जीतना और वश में करना यही शमगुण का जनरत्नण लक्षण है। ऐसा शम योगियों की योगसिद्धि में मुख्य उपायभूत और विवेकियों के स्वरूप- लयकारी हेतु है, परन्तु सरकार में केवल लक्षणावृत्ति से सिद्ध होता है; प्रत्यक्ष असम्भव है। जिस से शमादिक जीवों के सहायक साधन हैं और ईश में शमादिक स्वतः विद्यमान एकरस अखण्ड दण्डायमान विराजते हैं, अतएव सहस्रनाम में योगीश्वर पद विदित है।

यदि कहो कि श्रीरघुनन्दनजी में शमादि गुण कैसे संघटित होते हैं, तो सुनो। लीलाप्रकरण में तो ये परमशोभाप्रद हैं, जिस से अचांचल्य राजकुमारों का परम भूषण है और

नित्य स्वरूप में यह योगीश्वर पद से सिद्ध है। इस जीव को तो पांचो विषय बलपूर्वक अपनी ओर खींचते हैं। यह विचारने की बात है कि जब एक एक विषय के संयोग से पतंग मातंग कुरंग भृग मीन नष्ट होते रहते हैं तो जिस (मनुष्य) में पांचों यथार्थतः रहा करते हैं उस की कैसी दशा होनी चाहिये? एक जीव के साथ वे पांचों विषय इस प्रकार लगे रहते हैं जैसे अजा के साथ वृकवृन्द और धनी के साथ लुटेरे। जो आप ही परमदुस्तर गंभीर दुःखसागर में मग्न हैं वे हम को क्या आनन्द देंगे और ऐसे जीवों से प्रीति कर के क्या प्राप्त होगा? अतः सर्वोपरि विराजमान परमस्वतन्त्र सर्वेश्वर कृपालु हृषीकेश के शरण में निजानन्दार्थ, सम्बन्ध-प्रतिपालनार्थ और भय-निवारणार्थ अवश्य ही प्राप्त होजाना चाहिये।

इस सरस रामगुणानुसन्धान से मन की लयाकार-वृत्ति अनायास ही नामरूपमाधुरी में होजाती है, संशय नहीं। ये गुण चिद् घन चिन्तामणि स्वरूप हैं। निरन्तर गुणों के कहने सुनने से जो मोद-विनोद स्नेहियों को प्राप्त होता है उसे वेही जान सकते हैं। सबों का सिद्धान्त गुणकथन-में है। मैंने भलीभांति सब मतान्तर देख कर निर्णय किया है, परम सारसिद्धान्त भ्रांतिहारी प्रियगुणकथन है।

दोहा।

मन निरोध कारण विसद, बोध हेत सम मित्र।
तातें श्रीरघुवीर गुन, गुनिये परम पवित्र॥

इति श्रीयुगलानन्य-शरण-विरचिते श्रीहिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुण-दर्पणे शमगुणप्रदर्शनो नाम अष्टमो ऽध्यायः। ८।

——:*:*:*:——

अब श्रीसत्यसन्ध सुकुमार कोशलेश्वरकुमार के सत्य-गुणका निरूपण कियाजाता है। इस परमसिद्धान्तसार गुणका यही उत्तम प्रधान लक्षण है कि धर्मबीज हितकारी पवित्र गम्भीर माधुर्यसहित जो सर्वदा एकसम वचन बोलना वही सत्यवचन है। ऐसी सत्यवाणी का इन जीवोंसे उच्चारण होना असम्भव है, लोभी धूर्त मूर्ख खल छली आदिकों से सपने में भी ऐसी नहीं कहीजाती; जो इन अवगुणों से रहित हैं वेही ऐसा कह सकते हैं। यों तो उक्त अवगुणों के बीज संक्षेपसे जीव-मात्र में रहते हैं, पर केवल यथार्थ सत्यगुण सरकारही में स्वाभाविक पायाजाता है और सत्यत्व में श्रीमुखवचनही प्रमाण माने जाते हैं; यथा महारानी कैकेयी जीसे श्रीराज-कुमारजी ने कहा कि हे अम्ब! मैं ने मिथ्यावचन कभी नहीं कहा है, न कहूंगा, निश्चय जानो। यह प्रसिद्धि श्रीमद्वाल्मी-कीय रामायणके अवधकाण्ड में है। श्रीरघुकुलावतंस जी

सत्यवादियों मेंश्रग्रणी हैं। दया सत्य तप दान ये चार चरण धर्म के हैं, ये चारों श्रीरघुनन्दनजी के आश्रय से मोद-विनोद पाते हैं, पर सत्यगुण उनमें विशेष समझना चाहिये।

यदि कहिये कि श्रुति श्रीरघुनन्दनजी का परब्रह्मत्व प्रतिपादन करती है, इनमें धर्माचरण अप्रयोजन और व्यर्थ है? तो उत्तर यह है कि तुम सत्य कहते हो, परन्तु श्रीरघुनन्दनजी जो अमित यज्ञादिधर्माचरण कियाकरते हैं, वह केवल स्नेहियों के लिये, मर्यादासंस्थापन के लिये और उपदेश के लियेही, अपने लिये नहीं। जिन स्नेहियों ने प्रेममें मग्न हो श्रुतिस्मृत्युक्त कर्मों का त्याग किया है, उन के दोषोंको वह अपने सुकर्म द्वारा निवारणरूपी प्रायश्चित्त करदेते हैं। ऐसे नतपाल कृपाल करुणासिन्धु के जो मन वचन कायसे कपट छोड़ शरणागत न हुआ, उसके समान अधमाधम चाण्डाल और आत्मघ्न त्रिलोकी में कोई नहीं है। जो समस्त उपाधि छोड़ कर शरणागत होते हैं उनके देव-पितृ-ऋषि-ऋण अनायास ही दूर होजाते हैं।

इस गुण के अनुसन्धान से सत्य में प्रतीति होती है और जो श्रीरघुनन्दनजी के और उनके भक्तों के भक्ति-प्रपत्ति-प्रतिपादक प्रबल-वाक्य जहां तहां प्रकटित हैं, उनमें दृढ़विश्वास सत्य जानकर होता है, यही परमफल है।

दोहा।

सत्य बचन गम्भीर मृदु, धर्मबीज प्रद मोद।
श्रवन मनन करिये सदा, जुगलसुजस सबिनोद॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे सत्यगुणवर्णनो नाम नवमोऽध्यायः। ९।

अब श्रीक्षमासागर उजागर जी की क्षमा का निरूपण किया-जाता है। क्षमापति श्रीकुमारजी की यही अनूठी क्षमा है कि अत्यन्त उग्र अपराधी जीव पर भी समस्त कोप निवृत्त करके उसे अङ्गीकारकरना, और सबप्रकार समर्थ होनेपर भी सह-जाना, क्षमाकरना। यही सरकारकी मनोमोहिनी क्षमा है। जीवमात्र में असंख्य असाध्य अपराध हैं जो सर्वदा बने रहते हैं, वे न तो सुकृतसमूह से क्षीण होसकते हैं, न भोगसे निवृत्त होसकते हैं। वे केवल श्रीजानकीवल्लभजीकी क्षमा से अना-यास ही निवृत्त होनेयोग्य हैं, अन्य सभी उपाय व्यर्थ अनर्थ और श्रमदायक हैं।

क्षमा के अनुसन्धान के बिना चाहे जैसा पातकिशिरोमणि हो, शरणागत होने पर वह परमशुद्ध सज्जन सा होजाता है, सन्देह नहीं। जो कभी कुछ कोप श्रीरघुवीरजी का शरणागत पर लक्षित होता है, उसे प्रभु बीजवत् जानते हैं, वह कार्य-कारी नहीं होता; वह केवल भयदेने के लिये ही होता है,

जिस से दास कुमार्ग से प्रवृत्त न होय । विना क्षमा के कभी जीव का उद्धार नहीं, इसलिये सदैव स्वामी से क्षमा प्रार्थना करते रहना चाहिये ।

इसगुण के अनुसन्धान से संसृति का अभाव आप से आप हो होजाता है, सन्देह नहीं । यही इसका विचित्रतर फल है ।

दोहा:–

छमा किये ते तरि गये, भये जे नीच अनेक ।
तातें सकल उपाय तजि, गहौ क्षमा-गुण टेक ॥

इति श्रीयुगलानन्य-शरण-विरचिते श्रीरघुवरगुणदर्पण हिन्दीभाषावार्तिक – प्रबन्धे क्षमागुणप्रदर्शनो नाम दशमोऽध्यायः । १० ।

——:❀:❀:❀:——

अब परम दिव्य भव्य श्री अवधेशकिशोर जी का निर्मल सौहार्द गुण, जो अतीव सुखदाई है, निरूपण किया जाता है । सौहार्द का लक्षण यही है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य उत्तम वर्ण और योग जप तप व्रत पूजा नेम वेद पाठइत्यादि गुणों की अपेक्षाबिना ही केवल शरण मात्र से प्रसन्न होकर आप दास को अपनाते हैं । श्री रघुराई जी का सौहार्द सहज सुलभ है, जिसका

निरूपण श्री हनुमान जी तथा प्रह्लाद जी ने श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों में भली भांति किया है। जनसुखदायक श्रीरघुनायकजी केवल स्नेहमात्र से रीझ जाते हैं, वह स्नेह बिना श्रद्धा के होना दुर्लभतर है। श्रद्धा से ही सर्वार्थलाभ होता है। पुरुष श्रद्धामय होता है। श्रद्धा और ईश्वर में भेद नहीं है। श्रद्धा का अनूप स्वरूप आगे कहा जाता है:—

गुरु सज्जन और सच्छास्त्रों में दृढ़ विश्वास और उन के वाक्यों में परम प्रतीति को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा का द्वितीय स्वरूप यह है कि करने योग्य पदार्थ में क्षण क्षण साभिलाष शीघ्रता। तृतीय यह है कि कर्त्तव्य पदार्थ में अत्यन्त प्रिय बुद्धि करना। चतुर्थ यह है कि मेरी कार्य सिद्धि अनिष्टनिवारण-पूर्वक इसी से होगी, इस में सन्देह नहीं। पञ्चम रूप यह कि मैं करोड़ों काम छोड़ कर इसी में लगूँगा, इसी प्रकार श्रद्धा के रूप अनेक हैं। महात्माओं के पदपङ्कजपरागों के अभिषेक से अनूठी श्रद्धा प्राप्त होती है।

इस गुण के अनुसन्धान से जीवमात्र की प्रभुप्राप्ति-योग्यता सूचित की गयी, जिस से हम सबों को निःसंशय परम आह्लाद होता है। इस सौहार्द्र गुण से हम सबों को अवश्य ही सरकार प्राप्त होंगे, यही फल इस गुण के चिन्तन का है।

दोहा:—

बरनाश्रम जप तप बिना, द्रवत जानकी कन्त ।
केवल सरन निसोत लखि, श्रद्धा जनित अनन्त ॥

इति श्री युगलानन्यशरणविरचिते भाषावार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणादर्पणे सौहार्द्दगुणप्रदर्शनो नाम एकादशोऽध्यायः । ११ ।

परमउदार श्री महाराजकुमार जी के मधुर और सहज सुभग "सौशील्य गुण" का यही ललित लक्षण है कि कैसा ही कोई दीन हीन मलीन खिन्न हो, दारिद्र्दावानल से अतीव दग्ध हो, मुग्ध हो वा गुणखान हो उस से भी सप्रेम छल छिद्र त्याग कर मिलना और उसे अंगीकृत करना । इसी का नाम सुशीलता है, जो श्रीराघवजी मे यथार्थतः पायी जाती है औरों में तो नाममात्र के लिये, यह श्री भक्तिरसायण श्रीमद्रामायण में स्पष्ट है । देखिये कि बिराध महाकुरूप राक्षस जो परम विरोधी था उस से भी कृपाल श्री कोशलपालबाल जी ने अपना ब्रह्मादि दुर्लभ मनभावन पावन कोमल अङ्ग आप ही से स्पर्श कराया और उसे श्री सुशीलनिकेत जी ने सहज स्नेह विचार अपने हस्तकमल से भूमि में हर्षसमेत गाड़ा । श्रीगृद्धराज जटायु जी को भी इस से बढ़ कर अपनाया और सुखखान जी ने अपने करकंजों से उन का रुधिर पोंछ स्वजन के समान

दाहकर्मादि कर के सब प्रकार का सम्मान दिया। इसी प्रकार असंख्य कोल भिल्ल शवरी आदिकों से अनूठी प्रीतिरीति की और उन सबों को निज आस्वादसुख दिया। एक रसना से कहां तक कहा जाय, वह सुशीलता तो अमित शेष शारदादि भी कहते हुए संकोच पाते हैं। श्रीजानकीवल्लभजी की यह भी सुशीलता है कि स्नेहियों का आचरण निहारकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बारबार प्रशंसा करना, यह गाथा श्रीमद्रा· मायण में श्रीहनुमानजी आदि स्नेहियों के प्रसङ्ग में विदित है।

इसगुण के अनुसन्धान से हमलोगों का संशय दूर हुआ। यह बात जो मन में आजाती थी कि हमसरीखे अपावन और कुरूप को सरकार कैसे अपनावेंगे और स्पर्श करेंगे, वह भली-भांति निवृत्त हुई। हृदय में यह धिक्कार भी बारबार एकतार उत्पन्न हुआ, कि हाय! ऐसे सौशील्यसागर के पदपङ्कजपराग से रहित हो हमने अबलों अमित कल्प व्यर्थ अनर्थहेतु बिताये, यह अत्यन्त अनुचित किया; अतः अब हम सब आश विलास छोड़ श्रीजानकीजीवन से स्नेह करेंगे इत्यादि स्नेहियों का प्रत्यक्ष फल इस गुण के श्रवण मनन आदि से सिद्ध होता है।

दोहा।

हीन दीन अघपुंज ते, पीन खीन जड़ जीव।
ऐसेहु कहं ऊरी करत, यह सौसील्य अतीव॥

श्रीसीतापति सम सुभग, सहज सील गुणखान।
जुगलानन्य-सरन कतहुं, होत न मम हिय मान॥

इति श्रीयुगलानन्य-शरण-विरचिते भाषावार्तिक-प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे श्रीसौशील्यगुणप्रदर्शनो नाम द्वादशो ऽध्यायः।१२।

अब श्रीजानकीजीवन के मधुर आस्वादमय वात्सल्य-गुण का यथामति निरूपण कियाजाता है। अतीव अनुपम वात्सल्यगुण का यही लक्षण विचक्षणगण निरूपण करते हैं कि आश्रितभक्तों के दोषोंको ग्रहणकरके उसका फल हर्षपूर्वक आप भोगना, यही जनरञ्जन वात्सल्यगुण है। अथवा उनके दोषों को निज दिव्यशक्ति से दूरकर देना। अथवा श्रीमहीप-मणि-नन्दनजी का सचिक्कन तन मन वचन रूक्षतादि दूषण-रहित आश्रित स्नेहीमें सरस और एकरसरूपसे लगेरहना, यही वात्सल्यरस है। चतुर्थ यह लक्षण है कि जैसे गृहस्थ की ममता मोह छोह अद्रोह अकोह प्रीति प्रतीति तादात्म्य लक्षणरहित, विलक्षण और अनायासही स्त्रीपुत्रादिकों में होती है उससे भी करोड़ोगुण बढ़कर श्रीजानकीप्राणवल्लभजी का स्नेह आश्रितों पर निरन्तर और अपूर्वविधि से रहाकरता है। यह भी वात्सल्यगुण का विचित्र और स्वादमय स्वरूप है।

वात्सल्यगुण के अवधि चित्तचोर श्रीअवधेशकिशोरजी हैं, औरों में तो यह कणमात्र कहीं पाया जाता है, वह भी श्रीरघुवंशमणिजीकी कृपा से।

अब वात्सल्यपद का अर्थ कियाजाता है। वत्स नाम स्नेहगुणकी स्थिरता का है, उस का जो आदान (ग्रहण) करे वह वत्सल * श्रीरघुनन्दनजी हुए, तिनका भाव वात्सल्य अर्थात् ललिताचरण है। जैसे नवनीत में मिश्री और दुग्ध में दधि परम स्वादप्रद होता है, वैसेही आश्रितवत्सल सरकार श्रीमहाराजकुमार की वत्सलता और स्नेहियों का स्नेह निष्काम रूप से मिलने पर परस्पर के हृदयकमल में परम आस्वाद उत्पन्न करता है। इस कारण दोनों ओरसे प्रीति चाहिये, एक ओर से रहने में विशेष आनन्द नहीं होता। जबतक स्नेह की अधिकता नहीं होती तबतक वात्सल्य भी विशेष स्वाद नहीं देता, यह बात प्रसिद्ध है। प्रत्यक्ष भी लोक में पायाजाता है। जैसे बीजान्तर भी स्वादु है, परन्तु विना विस्तार के यथार्थ और मोहप्रद स्वाद नहीं होता। ऐसेही वात्सल्यगुण में सबप्रकार के मोद भरेहुए हैं किन्तु विना भक्ति वा स्नेह के उनका प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।

---

* वत्सं तर्णकं तद्वत्प्रेमपूर्णं भक्तं वा आदत्ते अनुगृह्णाति स्वीकरोतीति वा इति वत्सलः। संस्कर्ता।

इस विषय में श्रीरघुनन्दनजी के वाक्यप्रमाण बहुत ठौर संहितापुराणों में पाये जाते हैं यथा—"हम निरन्तर निज स्वतन्त्रता छोड़ सर्वदा भक्तों के अधीन हैं। भक्त हमारे जीवन हैं और हम भक्तों के जीवन हैं। जैसे पतिव्रतधर्मसम्पन्न ललना अपने हाव भाव कटाक्ष और सेवा आदि से पति को वश करलेती है, वैसेही हमें रसिक भक्तों ने अपनी विचित्र प्रीति से वश कर ली है। वे चारो प्रकार की मुक्तियों को तृण की नाईं जानते हैं, देने पर भी नहीं ग्रहण करते और रहस्य सेवारस में आसक्त रहते हैं, मेरेलिये इनके सब प्रकार के शुभाशुभ सांसारिक अभिलाषों का त्याग किया है, अपने शरीर में भी तनिक प्रीति नहीं रखते, केवल मेरे अभिराम नाम और गुणरूपी सुधा को निरन्तर चखतेरहते हैं; योंहीं अनेक प्रकार से मुझ में ही मग्न रहते हैं, उनके साथ अन्तराय * निवारण पूर्वक रक्षाकरते हुए मैं सदा फिराकरता हूं, स्वप्नमें भी उनका विस्मरण मेरे तन मन वचन से नहीं होता। इस प्रकार की सुधासानी सुखखानि वाणी श्रीजानकी-जानि + जी ने जन-सुखसदन निजवदन से अनेक ठौर बखानी है। अतः इस कथन से दोनों ओर के अतिशय स्नेह का सूचन हुआ।

श्रीजानकीवल्लभ जी के सेवक भक्त दो प्रकार के हैं, एक मुग्ध, दूसरे विदग्ध। इनकी रीति अपनी अपनी भावना के अनुसार देखी जाती है। मुग्धों (मूर्खों वा सूधों) में मनहरण

* विघ्न। + श्री रामजी।

परिकराभरण श्रीयुगलललन जी का अत्यन्त स्नेह वात्सल्य रहा करता है, किन्तु विदग्धों (प्रौढ़बुद्धियों) पर सरकार का वैसा छोह नहीं रहता, क्योंकि उनको अपने बल बुद्धि का भी भरोसा रहता है। मुग्धों को तो केवलयुगल सरकार ही उपाय-उपेय * रहते हैं।

एक स्वभाव सरकार का और भी अत्यन्त विचित्र यह है कि पुराने अत्यन्त स्नेहपात्रों से भी अधिक पुनीत प्रीति नवीन स्नेहियों पर करते हैं।। यह बात युद्ध काण्ड में प्रसिद्ध है, जो श्रीरघुकुलावतंस जी ने सुग्रीव जी के प्रति कही थी। जिस समय दशकण्ठ निज सभामण्डल में नृत्य गीतादि उत्सव में तत्पर था और श्रीरघुनन्दन जो सेनासहित सुवेलनामा नगेन्द्र पर आसीन थे, उस समय श्रीकपिराज ने दशमौलिका उद्धत-त्व और अशंकत्व देख-न सहकर दुर्ग पर से कूद कर उस के निकट गये और श्रीराघवेन्द्र-प्रताप सुनाकर उसके बल-पौरुष का भली भांति विध्वन्स किया, फिर परम हर्ष सहित श्री राजीवनयन जी के समीप चले आये। श्री आश्रितवत्सल जी उठकर अङ्कमाल करके मधुर मनोहर अमृतमय वाणी से बोले कि हे अकुण्ठप्रताप प्यारे सुकण्ठ ! राजा को ऐसा साहस नहीं करना चाहिये, अकेले शत्रु के समीप जाना और युद्ध करना अनुचित है। यदि तुम पर कुछ अन्यथा उपद्रव हो जाता तो मैं लक्ष्मणादिकों को और निज जीवन को लेकर क्या करता ?

* उपेय = जिस की प्राप्ति करनी हो।

तात्पर्य यह कि जैसी दशा तुम्हारी होती, हमारी भी अवश्य ही बरन् कुछ विशेष ही होती। अतः तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं। यह सुनकर प्रभु का भाव विचार श्री कपिराज कृतकृत्य हो गये।

क्याही स्नेह मुग्धों में होता है! यह विचारने की बात है। प्राचीन प्राणप्रिय श्री लक्ष्मणादिकों से भी अधिक प्रीति श्री राघवजी उन में करते हैं, अतः मुग्धता विचित्र है। प्राचीन विदग्ध भक्त ब्रह्मादिक तथा मुनिवर्य गण ज्ञानसम्पन्न और परात्परैश्वर्य चिन्तन करनेहारे हैं। विदग्धों को माधुर्य-रसास्वादन स्वल्प ही होता है। किन्तु ज्ञानमय ऐश्वर्य-चिन्तन अधिक होता है। परन्तु मुग्धों को निरन्तर सकल वासना छोड़ सुधबुध विसार कर श्रीप्राणप्रिय जी की एकरस अभिनव अङ्ग-माधुरी का प्रतिक्षण पान करना ही अनुक्षण का कार्य रहता है।

सरकार की माधुर्यमयी लीला भी विदग्ध भक्तों की सभा में कुलबधू सी संकोचयुक्त होती है, किन्तु मुग्ध भक्तों के निकट रम्भादि नायिका सी अत्यन्त हर्षयुक्त विना संकोच के क्रीड़ा करती है; यतः वहां मुग्धों की अज्ञानता देखी जाती है अतएव वहां रमण करती है। श्री जानकीविहारी भी मुग्धों में आप भी मुग्धतर होकर विना संकोच निरन्तर बहारदार विहार करते हैं। अतएव स्नेही को वही चिन्तन करना चाहिये,

जिस में प्रियतम को अत्यन्त रुचि और आनन्द होवे; पर जिस में संकोच हो, वह करना अयोग्य है। श्री महाराज रघुनन्दन जी अपना परात्पर परत्व सुन कर सकुचते हैं और माधुर्यरहस्य वार २ चाह के साथ सुनते हैं, इस से माधुर्य रस ही विशेष ध्येय है। ऐश्वर्यचिन्तन केवल प्रथम बोध के लिये और साधनकोटि में है, किन्तु माधुर्यरसास्वादन साध्य है। आयोध्यावासी नर-नारीगण पूरे मुग्ध हैं जिस से उन के वचन भी मुग्धपन के पाये जाते हैं। श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड में लिखा है कि वहां के समस्त नारिनरगण सायं प्रातः देवताओं को पूज कर साभिलाष यही मनाते हैं कि श्री रघुनन्दन जी निरामय मङ्गलमोदमय रहें और हम सब उन्हें नित्य देखते रहें। भुक्ति मुक्ति की चर्चा सपने में भी कहीं श्रीअवध में भूल कर भी कोई नहीं करता।

सम्बन्धानुरागी जितने हैं वे सब माधुर्यप्रधान और मुग्ध हैं, जिस से अब भी यही उचित है कि सब भांति से मुग्ध भक्तों की रीति प्रीति धारण करना चाहिये। विदग्धता में स्नेह की मधुरता-सरसता नहीं रहती। अतः सब प्रकार से श्री जानकीवल्लभ जी में स्नेह-सम्बन्ध कर्तव्य है। जितने साधन हैं, वे सब विरोधी हैं, क्योंकि उन में स्वतन्त्रता का अभ्यास बना रहता है, पर तदीय होकर तदेकोपाय होना

यह विचित्र रहस्य है। जब तक इस को अपने साधन का भरोसा रहता है, तब तक प्राप्ति दुर्लभ रहती है, यह बात सत्य माननी चाहिये। जो होय सो सीतावर जी की कृपा और वत्सलता से होय, अपने साधन उपाय से कुछ नहीं होगा, यही विश्वास सुखराशि-निवास है।

इस वात्सल्य गुण के अनुसन्धान से स्नेहियों को बहुत लाभ होता है, तो भी विशेष तो लाभ यह है कि ऐश्वर्य-चिन्तन का त्याग और मुग्ध होकर माधुर्य-रसास्वादन यही इस का अमल फल है और अत्यन्त अशङ्कता का लाभ भी होता है। इस गुणचिन्तामणि (वात्सल्य गुण) के सम्बन्ध से क्या क्या लाभ न होगा, किन्तु सभी करतलामलक होगा, सन्देह नहीं।

दोहा।

बिसद बिभवबर दोखि बर, बत्सलगुन सियलाल।
दोष सोष कर घोषप्रद, जुगलानन्य असाल ॥१३॥

इति हिन्दी भाषावार्तिक प्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे श्री युगलानन्यशरण विरचिते श्री वात्सल्यगुणवर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः। १३।

अब सर्वेश सिरमौर चित्तचोर श्री महाराजकिशोर का सर्वोत्तमोत्तम परमध्येय ज्ञेय पेय श्री सौलभ्यगुण का निरूपण किया जाता है। अधिकारी अनाधिकारी सकल जीवों को अनायास प्राप्त होना ही सौलभ्यगुण का स्वरूपात्मक लक्षण है, यही सौलभ्यगुण की प्रशस्तता है। सौलभ्यगुण को स्पष्ट करनेवाली परमप्यारी एक पुराण की गाथा प्रमाणरूपा और श्रोतव्य है। यद्यपि श्रीमान् नृपनन्दन जी की सुलभता सब ग्रन्थों में साजसहित गाज रही है, तथापि इस गाथा में परत्व और सौलभ्य दोनों स्पष्ट झलकते हैं। अतएव लिखी जाती है, सारग्राही सज्जनगण विचार लेंगे।

एक समय सर्वशक्तिपदवन्दिता अनिन्दिता सकल गुण मण्डिता परा शक्ति ने अपने अंशभूत माया में लीन समस्त जीवों को भोगमोक्ष साधन रहित और दुःखौघ सहित निहार कर परमदयासम्पन्न हो सर्वेश्वर श्री कौशल्यानन्दबर्द्धन मनोजमदमर्द्दन पुरुषोत्तम जी से अतीव प्रणय सहित विनय की, कि हे राजराजेश्वर नित्यविभूतिनायक श्रीरघुनायक जी, आप सब प्रकार से कृपादि दिव्यगुण के खान हो, जिससे सरकार को परम उचित है कि विचित्र सौलभ्य गुण को प्रकाश कीजिये और उसी गुणके अनुसार पामरों को भी निज पदनिवास दीजिये।

ऐसी सुधासानी वाणी सुन गुन कर सर्वेश्वर श्री रघुकुलावतंस जी ने अपने शक्ति गुणांशद्वारा वासुदेव प्रद्युम्न अनिरुद्ध संकर्षण रूप चतुर्व्यूह प्रकट किये। ये चारों उदार संसार के मुख्य कारण हैं, इन्हीं के अंश से अशेष ब्रह्मा विष्णु महेश उत्पन्न होते और लीन भी हो जाते हैं। ऐसे विचित्र अवतार सुलभता के लिये प्रकट हुए, तोभी देवी के हृदयपङ्कज में प्रसन्नता न हुई। जिससे फिर प्रश्न और प्रार्थना की कि हे देव-देवेश करुणावेशजी, आप सब के लिये सुलभ न हुए, क्योंकि अपने अपने लोकों में व्यूहस्थित रहते और देवरूप हैं, इस से सब के लिये सुलभता असम्भव है।

यह सुन श्री पूजित सर्वेश जी ने निज विभवाँश से अन्तर्यामित्व प्रकट किया और सबके हृदयान्तःकोष में निवास दिया। तब श्री प्रणत रक्षणतत्परा सरकारी शक्ति ने पुनः प्रार्थना की कि हे निज-जनार्ति-हरण शरणागतवत्सलजी, यह (रूप) तो और भी दुर्लभ हुआ, क्योंकि यह अगोचर है और केवल योगीश्वरों के दृग्विषय होने योग्य है, अतः अब सुलभ हूजिये, तब सुलभतार्थ श्री राघवेन्द्रकुमार जो ने श्री-सम्पन्न अष्टभुजादिरूप निजअंश अंशांशसे प्रकट किया। तोभी महामाया प्रसन्न न हुई, क्योंकि यह रूप भी दुर्लभतासहित उपासकों से लभ्य है सबोंसे नहीं। अतः इन में भी सुलभता नहीं पायी जाती। अतः उक्त देवी ने फिर प्रार्थना की कि हे नतपाल

कृपाल जी ! सुलभ हूजिये। तब श्री रघुनन्दन जी ने जीवो-द्धार हेतु निज कलांश से मत्स्यादि अवतार प्रकट किये। तब भी देवी हर्षवती नहीं हुई। क्योंकि उक्त अवतार एक तो विजातीय, दूसरे अल्पकाल-स्थायी, तीसरे इनकी कीर्ति अत्यन्त लघु, अतः इन में सुलभता नहीं देखी गई।

सौलभ्यगुण उसी रूप में हो सकता है जिस में ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों विचित्र हों और जिस का सुयश अनन्त हो, वही सबों को सुलभ होता है दूसरा नहीं। फिर उक्तदेवी के प्रार्थनानुसार सर्वेशपूजितचरण मनहरण जी ने सर्व नीच जीवोद्धार हेतु निज करुणांश से अर्चावतार स्वयंव्यक्तादिभेद से प्रकट किये। तोभी देवी प्रसन्न न हुई, क्योंकि अर्चावतार भी सबों के सुलभ नहीं हैं, वे केवल अधिकारी ही मात्र को सुलभ हैं, क्योंकि सब तो उनका पूजन नहीं कर सकते। प्रकट देख लीजिये। इस पर भी जब सुरसेवी देवी की प्रसन्नता न हुई, तब श्रीपरात्परेश्वर जी ने अतीव मधुर वचनों से पूछा, कि हे प्रणतजनरञ्जिनि ! किस प्रकार से तुमको हर्ष होगा ? वह सङ्कोच छोड़ कर मैं सभी पूरा करूंगा, संशय नहीं।

इस प्रकार की रहस्यरससरसानी वाणी सुनकर परमा-नन्दभरी महादेवी प्रार्थनामय वचन बोली। हेदेवाधिदेव-वन्दित-पदपद्मपराग ! इस पूर्वोक्त सौलभ्यगुण के प्रकाशार्थ

आप ने जो नानाप्रकार के रूप प्रकट किये वे सब विजातीय जीवों के हैं। जीवों को सजातीय विना यथार्थस्नेह नहीं होता और स्नेह के विना सुलभता नहीं दीखती। देवतादि विग्रहों में प्रीति की विचित्रता नहीं पाईजाती और जो मनुष्याकार अवतार भी हुए उनसबों में भी नित्य मनुष्यत्व नहीं। उनकी कीर्ति भी अतीव विचित्र विशाल अकलङ्क वा अशङ्क नहीं। अतः आप यदि श्री अवधविहारी नित्यमनोहर मनुजाकार द्विभुज परात्पर सरकार प्रकृतिमण्डल में अप्राकृत लीलायुक्त परिकरसहित प्रकट हों तो अवश्यही सौलभ्यगुण भलीभांति झलके।

यदि कोई कहे कि पहले देवाकार थे अब भक्तों के लिये मनुष्याकार हुए हैं, तो यह कहना अत्यन्त असम्भव और विना समझ के है; क्योंकि जिसने रसिकपरिकरों के साथ नित्य-किशोर श्रीजानकीवल्लभजी के परात्परत्व-विषयक सत्सङ्ग नहीं किया, वह बेचारा क्या जानसके, यह रहस्य तो देवेशों को भी दुर्लभ है। यदि दशकण्ठ का मरण कपटकल्पित मनुष्य के हाथ से होना बदा होता, तो इन्द्रादि देवताओं में से ही कोई एक मनुष्य होकर उसका नाश करडालता, पर ऐसा नहीं हुआ। इसी से स्पष्ट होता है कि नित्य मानवाकृति श्रीपरात्परेश्वर के ही करकञ्जों से उसका बध हुआ, विष्णु-

आदि तो देवता हैं किन्तु नित्य मनुजाकार श्रीराघव के सिवा दूसरा कोई नहीं है।

श्रीमद्वाल्मीकीय युद्धकाण्ड में स्वयं सरकार ने देवताओंकी सभा में श्रीब्रह्माजी के प्रति स्वमुखकमल से अमल वचन कहा, कि मैं श्रीमहाराज दशरथजी का आत्मज हूं, राम मेरा अभिराम नाम है, मैं मनुष्य हूं, अर्थात् नित्य मानवाकार हूं। उक्त उक्ति में श्रीमहाराज पद कहने से सरकार ने नित्य परि-वार सम्बन्ध सूचित कराया, राम इस नाम द्वारा यही मेरा नाम अनादि है यह सूचित किया और सरकार महाराज-कुमार ने मनुष्य पद से नित्य द्विभुज परात्परत्व सूचित कराया यह बात मन की अज्ञानता छोड़ कर विचारने योग्य है। यदि कोई मतिमन्द कहे कि "यहां निज ऐश्वर्य गोपन करके श्रीरघुवीरजी ने अपने को मनुष्य कहा है" तो उसका कहना भी सत्य है, परन्तु सरकारने अपना मनुष्या-कारत्व, श्रीमहाराजसूनुत्व और श्रीराम-नाम यह तो नहीं गोपन किया। यदि कहो कि व्यवहारदेश में यह कहा है तो व्यवहार श्रीरघुनन्दनजी का सत्य है अथवा असत्य? यदि असत्य कहोगे तो सर्वश्रुति-स्मृति-सम्मत श्रीरघुवीरजी का सत्यत्व व्यर्थ होजायगा। यदि यह व्यर्थ हुआ तो सभी वेद मिथ्या हुए और यदि सत्य है तो सरकार में यह उक्ति परम यथार्थ रमणीय और सकल-शोक-शमन-योग्य है। मेरा संवाद

आस्तिकों के साथ है, नास्तिकों और कुतर्कवादियों से क्या प्रयोजन ?

अब प्रसङ्ग सुनिये। ऐसे सर्वोपरिविराजमान नित्य द्विभुजाकार रसमयमधुरमनोहरविग्रह सुखसन्दोह रघुकुलावतंस हो परात्पर पदार्थ स्नेहियों को सौलभ्य और निजसुधासार अभिनव अङ्गमाधुरी दिखाने के लिये समस्त दिव्य अदिव्य परिकरनिकर के साथ भरतखण्ड-मध्यस्थ मन्वादिपालित पूजित स्पष्टप्रकाशयुक्त अवध में पूर्वोक्त महादेवी (शक्ति) के विनयानुसार प्रादुर्भूत हुए।

यहां यह संशय नहीं करना चाहिये कि श्री अवध जो परात्पर वह ऊपर है, यह लीला-अवध है। इस में तात्पर्य बहुत गोप्य है, जो अनन्य उपासकों को गम्य है। श्री अयोध्या जी तो एक ही हैं और सदा भरतखण्ड में स्थित हैं। जिस समय पृथ्वी को रचना भी न हुई थी, उस समय भी यह एक रस नित्य अखण्ड सच्चिदानन्दरूप से स्थित थीं और महाप्रलय में भी ऐसे ही स्थित रहेंगी, विपरीत कदापि नहीं। यह उस समय अपना अनूप स्वरूप दिखाती हैं जिस समय देह से अत्यन्त निराशा और परम मधुर प्रीति प्रकाश होती है उसी समय धाम का एकरस स्वरूप झलकता है। यहां ही नित्य अवधविहारी श्री जानकीवल्लभ जी परिकरसहित रहा करते हैं। जब उन की वा उन के परिकरों की इच्छा होती है तब

प्रकट हो कर के असंख्य पामर जीवों को तारते हैं। इस रहस्य का सम्पूर्ण भेद भली भांति लिखते नहीं बनता, सत्संग से जाना जायगा। श्री रघुनन्दन जी ने यहां प्रादुर्भूत हो कर सुकृतपुंजजनक विचित्र और पवित्र माधुर्यमय परत्व प्रकट किया।

मुनिवर्य वाल्मीकि जी ने शतकोटि रामायण एक से एक अद्भुत रचे। श्री शंकर जी, श्री मारुतनन्दन जी तथा असङ्ख्य मुनियों ने रामायणात्मक करोड़ों नाटक रचे। इसी प्रकार १८ पद्म कपियूथपतियों ने श्री मद्रामायण विस्तारसहित दोदो एकएक रचे थे। विचारना चाहिये कि ये कितने चरित्र हुए, दूसरों के तो दश पांच लाख भी निसोत चरित्र मिलना दुर्लभ है। मनभावन जी के चरित्र ऐसे पवित्र हैं कि उस के एक एक ब्रह्महत्यादि महापातकों के भी नाशक हैं। ऐसा चरित्र सरकार ने जीवों के मोक्ष और भक्तिरहस्य को सिद्ध करने के लिये भूमण्डल में स्थापित किया कि जिस को सुन गुन कर सांसारिक लोग पावन होंगे। आप ने भी प्रकट होकर बहुत वर्षों तक विनोद दिखाया, स्नेहियों के नयन वचन मन में अपने रूप की रसानन्दवर्द्धिनी माधुरी बरसायी और श्री अवधधाम के दर्शन का महत्व भलीभांति प्रकट कर दिखाया ऐसा कि जो क्षणभर भी निहारे उस को यमगण नहीं स्पर्श करें और श्री परमधाम को प्राप्त होवे तथा जो कोई उस का

दर्शन करे वह अवश्य कृतार्थ होवे। इस प्रकार की मर्यादा को श्री कौशल्यानन्दवर्द्धन जी ने स्थापित किया, कहां तक कही जाय। सरकार ने इसी प्रकार से सुलभ हो कर अमित जीवों का निस्तार किया। फिर तिरोहित होकर निजनित्यविहार में तत्पर हुए, प्रकट के समय तो श्री राम जी द्वारा थोड़े ही जीवों का विस्तार हुआ।

सौलभ्यगुण का प्रतिपादन करनेवाली इस कथा को जो कोई तीनों समय विनय सहित पाठ करेगा वह निस्सन्देह श्री जानकीजीवन को प्राप्त होगा। इस दिव्य सौलभ्यगुण के अनुसन्धान से परम सुलभता के लाभरूप अमल फल का लाभ हम सबों को अनायास ही हुआ और श्री रघुवीर जी दुष्प्राप्य हैं यह शङ्का निवृत्त हुई। जिन को निज साधन का अभिमान है उन को तो वह दुष्प्राप्य अति दुर्लभ हैं किन्तु हमारे सदृश तदेकोपाय वालों को तो सदनसम परम सुलभ हैं।

दोहा।

श्री सीतापति सहज सुचि, गुनसौलभ्य अनूप।
जुगलानन्य सरन सुखद, मेटत भयभवकूप॥

इति श्री युगलानन्य शरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे सौलभ्यगुण प्रदर्शनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः। १४।

—०—

अब सर्वेश्वरेश्वर महाराजकुमार श्रीजानकीवल्लभ जी की सर्वज्ञता का निरूपण किया जाता है। श्रीराघवेन्द्र-किशोर के सकल वस्तु मात्र के नाम गुण स्वरूप का यथार्थ प्रत्यक्ष औ सर्वकाल में विना भ्रमादि के अनायास जानना ही सर्वज्ञता है। श्रीरघुनन्दन जी का सर्वज्ञता-गुण स्वाभाविक सरस है, अन्य ईशों को तो श्रीसीतावर-भजन-लब्ध कृपा से प्राप्त होता है। सब पदार्थों का बोध किसी को शास्त्रों द्वारा होता है, किसी को प्रत्यक्ष नेत्रादि से दर्शन श्रवण द्वारा होता है। सर्वज्ञता नित्य मुक्तों और शिवादिकों में पाई जाती है, परन्तु वे ध्यान कर के जानते हैं, स्वाभाविक नहीं जानते, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। अतः परम परेशत्व श्रीजानकीजानि में ही पाया जाता है औरों में नहीं, लीलाप्रकरणों में भी बहुत ठौर सर्वज्ञतागुण श्री सीताकान्त जी में पाया जाता है, नित्यलीला में तो स्पष्ट ही है।

वेद में एक से एक का ज्ञान और आनन्द अधिक कहा गया है, परन्तु सबों की सीमा श्री जानकीवल्लभ ही में निरूपण किया है, क्योंकि श्रीरघुनन्दन जी का तत्व विचित्र ही है। अब आनन्द और ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि कही जाती है। मनुष्य जाति के आनन्द और ज्ञान पशु से सौ गुना अधिक होते हैं, यक्ष और राक्षसों का मनुष्य से सौ गुना अधिक होते हैं, उन से अधिक दैत्य दानवों के होते हैं, उन से अधिक

योगियों के, योगियों से अधिक मानव-गन्धर्वों के, मानव-गन्धर्वों से अधिक देवगन्धर्वों के, उनसे अधिक पितृगण के, उन से अधिक अज्ञानज देवों के, उन से अधिक नित्य देवों के, उनसे अधिक मरीच्यादि ऋषिवर्यों के, उनसे अधिक रुद्र के और रुद्र से सौ गुना अधिक ज्ञान और आनन्द ब्रह्मा जी के होते हैं। ब्रह्मा जी से शतगुण अर्थात् असंख्य गुण ज्ञानानन्द युक्त श्रीरघुवर-पदपङ्कज-लुब्ध-मधुप धर्मनिष्ठ वरिष्ठ उपासक हैं, उनके स्वामी श्रीजानकी बिहारी जी हैं। उनके ज्ञान और आनन्द का क्या कहना है, कोई उपमा नहीं जो दीजाय; श्रीराघवेन्द्र जी अनूप हैं।

जो कोई श्रीरघुकुलावतंस जी से आगे पर पदार्थ का निरूपण करता है अथवा रुचिसहित श्रवण करता है, वह नास्तिकाग्रगण्य, पाखण्डि-शिरोमुकुट, अधम नीच, पामर, मनुजाद-सिरमौर और मतिबौर है, उसका मुख देखना महा-पाप-जनक है, यह बात संहिता पुराणादिकों में विदित है, छिपी नहीं। यदि शक्ति होय, तो ऐसे अधम को जीभ उखाड़ डाले अथवा वहां से हाहाकार पूर्वक शोकसहित हट जाय। श्रीजानकीबल्लभ जी का परत्व परात्परतम है, इस के साथ किसी का मिलान करना वा अभेद कहना महाघोर अपराध है जैसे खद्योत को उदित मार्तण्डसम कहा जाय। जो कुतर्क-वादी अपनी अज्ञता और आसुरमत सम्बन्ध से श्री रामपरत्व

में संशय करते हैं वे ऐसे हैं कि जैसे प्रबल चक्रवर्ती का डंका उद्दण्ड रूप से गरज कर बजे और कोई बधिर अथवा सात कोठरी के भीतर बैठा मनुष्य नहीं सुन सके और कहे कि "कहां डंका बजा है" और दूसरे समझावें कि "तुम भीतर रहने के कारण नहीं सुन सके अब (बाहर आने पर) उस का शब्द अवश्य सुन सकोगे।" इसी प्रकार से श्रीमहाराज कुमार सरकार का प्रबल परत्व श्रुति स्मृति और लोक में अशंक रूप से गरज रहा है, परन्तु जो अविद्या-कोठरी के अन्तर्गत हैं और ज्ञान रूप इन्द्रिय से हीन हैं, उन को नहीं जान पड़ता।

वह जब श्रीरामोपासकों के समीप आर्त और जिज्ञासु होकर जाता है तब जान पड़ता है कि श्रीदशरथराजकिशोर जी ऐसे विचित्र हैं अन्यथा पच २ कर मर जाता है, परन्तु श्रीकोशलेश सूनु को रङ्गदारी दुर्लभ होती है। प्रभु-प्रतिकूल क्रियाओं का त्याग और श्रीरघुनन्दनानुकूल कर्म का सप्रेम संकल्प-उत्थापन स्नेही जनों का स्वाभाविक कार्य है। श्रीरघु-नन्दन जी सर्वज्ञ हैं तो हम कैसे अन्य रहस्य का संकल्प उठावें और करें, ऐसा संकोच करते हुए केवल प्रिया-प्रीतम-विषयक संकल्प ही उठाना चाहिये दूसरा नहीं। इस सर्वज्ञ गुण के अनुसन्धान से इसी विचित्र फल का लाभ हुआ।

दोहा।

जानत जीवन जन सबै, लघुदीरघ गुन बात।
तातें तजिये विषम मति, गति गुन गुनि हिय तात॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सर्वज्ञगुणवर्णनो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।१५।

—:*:*:*:—

अब भक्ति-मुक्ति-प्रदायिनो श्रीपरात्परतम परममाधुर्यैश्वर्य-सदन जी की पराशक्ति का निरूपण अपनी भक्ति के अनुसार संक्षेप से किया जाता है। श्रीपरेश्वर जी के शक्तिगुण का यही अनूठा विशद विलक्षण लक्षण है, कि वह शक्ति अघटन-घटना-सामर्थ्यवती है। जो किसी से होने योग्य नहीं वह सहज में दरसा देना और जो पदार्थ अत्यन्त अचल है उस को तृण के समान अनायास ही निवारण कर देना यही इस शक्ति का गुण है, श्रीजानकी-प्रीति-परवश जी में यह अति अद्भुत और अनिवार्य शक्ति है। सभी गुण शक्तिगुण के आश्रय से ही गरजते हैं, अन्यथा वे कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकते। रसिकचित्तचन्दन जगबन्दन दृगफन्दन श्रीमहाराजनन्दन जी के आगे २ यही गुणगणजटी अतीव अटपटी अघटन-घटना-घटी शक्तिरूपा नटी असङ्ख्य ब्रह्माण्डमयी नयी २ अनेक कौतुकरचना, निजलाजप्रणयपूर्वक दिखाती है, रिझाती है,

श्रीकोशलेशकुमार जी की कमनीय कीर्ति गाती है, अपने नृत्यकारी-भाव से सब ईश अनीश मुनीशों को नचाती है और असंख्य कल्पों से नित्य नवीन नाट्यकौतूहल-रचनाकरती है, परन्तु कभी आलस्य अथवा प्रमाद-विषाद नहीं पाती।

शक्ति गुण एक नित्यएकरस अखण्ड अपार पारावार सागर है, उसी शक्तिसिन्धु में ब्रह्मा विष्णु महेश नारायणादि समस्त ईश मत्स्यसम असङ्ख्य गोता खाते उछलते और लीन होते हैं, जहां इन की यह गति है वहां अन्य रङ्क जीवों की कौन गिनती है। सरकार श्रीमहाराजकुमार जी की यह भ्रूविलासी सम्भाविनी शक्तिरूपा किङ्करी सदैव आज्ञावर्तिनी हो हाथ जोड़े हाजिर रहती है। श्रीरघुवीर जी आप भी इस की करतूति-विभूति देख कर आश्चर्यित होते हैं। इस की चर्चा में आनन्द आता है। इस के समान जीवों के कठिन क्लेश काटने में कोई जप तप ज्ञान वैराग्य योग आदि नहीं समर्थ होता, यह आग्रह छोड़ दृढ़कर जानो। केवल श्री राघवेशबल्लभ जी की शक्ति द्वारा ही निवृत्ति होती है, अन्यथा अविद्यामय रोगशोक दूर नहीं हो सकेगा। इस से सब प्रकार से यही उचित है कि जिस परात्परतर की ऐसी शक्ति है उस के शरण में छल-छिद्र छोड़ कर आ जावे।

ऐसे अद्भुत शक्तिमान के अनूप स्वरूप को जानते रहने पर भी जो निजमोदार्थ अन्यत्र चित्त लगाता है, वह अत्यन्त जड़-

शिरोमणि है और उस नीच दुर्मति को वार वार धिक्कार है। वे अपने धाम में ही कामधेनु को छोड़ दूध के लिये आक को दूहते हैं जिस में केवल हानि ही हाथ आती है और वे श्रीसरकार के शरणागत नहीं होते कि जिससे दुःखावसान हो। उनके पास यदि कोई सद्‌गुरु भी भाग्यवश प्राप्त हों तो निज अज्ञता के कारण वे उनके वचन पर विश्वास नहीं करते। कहांतक कहा जाय, इतने में ही समझलीजिये कि बिना श्रीसीताकान्त जीके शरण आये किसीसे अभयता नहीं प्राप्त होगी, चाहे कितनाही उपाय कीजिये। अतः सकल-शक्ति-सिरताज स्नेहसुलभ श्रीजानकीबल्लभजी के पदपङ्कजों में, मन वचन मतिगति को सभी ओर से फेरकर अवश्य और शीघ्रही, लीन करना चाहिये।

उक्त श्रीशक्तिगुण के अनुसन्धान से प्राप्त फल पहला यह कि मैं किस प्रकार इस प्रकृतिमण्डल को छोड़ नित्यपरिकर में सम्मिलित हूंगा, यह चित्तका संशय शक्तिगुण की सबलता विचारकर अनायासही निवृत्त होगया। दूसरा यह कि श्रीजानकीबल्लभजी के गुणों के निरन्तर अभ्यास अभ्यास श्रवण मनन करते करते थोड़े दिनों में परात्पर का अतीव मधुर स्नेह हृदय में आविर्भूत हो जाने में तिलमात्र भी सन्देह नहीं रहा। सब पदार्थों से विचित्र ही गुणों के अनुसन्धान का प्रताप होता है। अन्य साधनों में अनेक

अन्तराय और अमित जन्मान्तर के बाद सिद्धिलाभ होता है, इस में तनिक सन्देह नहीं। अतः श्रीसद्गुरु से गुणों का यथार्थ स्वरूप जानकर छल छोड़ उनमें रति करनी चाहिये और आचार्य के वचनामृत में प्रीति प्रतीति पूर्णरूपसे चाहिये। गुणों के विचार से समस्त सिद्धियां करतलामलकवत् हो जाती हैं, इस में और कोई रहस्य नहीं है।

दोहा।

श्री सीतावर-तीव्रतर, शक्ति सहज परचंड
जुगलानन्य सरन करन, हरन विषय भ्रमखंड ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे शक्तिगुणप्रदर्शनं नाम षोड़शो-ऽध्यायः। १६।

——:*:*:*:——

अब कृतज्ञेश्वर श्री रघुकुलावतंस जी के प्रशस्त कृतज्ञता-गुण का निरूपण स्वमति अनुरूप किया जाता है। अपने स्नेहियों के कृत अर्थात् सुकृत को विशेषरूप से जान कर उन का अङ्गीकार करना यही कृतज्ञतागुण का लक्षण है। ऐसी कृतज्ञता केवल श्री कोशलेन्द्रकुमार में स्पष्ट रूप से झलकती है, औरों में तो कहीं कणमात्र श्रीराघवप्रसाद से ही प्राप्त पायी जाती है। सुखमायन श्रीमद्रामायण में यह गुण शबरी

जटायु कोल भिल्ल द्वारा भली भांति प्रसिद्ध है। सर्वगुणरूपी क्षीर में भी कृतज्ञतागुण सुधासम मधुर है। कृतज्ञता बिना सर्वज्ञता में स्वाद नहीं। केवल सरकार की कृतज्ञता से जीव-मात्र का उद्धार होता है अन्यथा महाकल्पान्त में भी उद्धार दुष्कर है।

यह विचारने की बात है कि जितना कृत (सुकृत) सत्य-युग वालों से होता था उतना त्रेता में नहीं, त्रेता में जितना हुआ करता था उतना द्वापर में नहीं और द्वापर सा सुकृत कलि में नहीं होता। इसी प्रकार जो कृत (सुकृत) ब्रह्मा-दिकों से होता है वह महामुनियों से नहीं। परन्तु श्री जानकी विहारी जी को छोटे बड़े वे सब (सुकृत) ज्ञात होते रहते हैं। इस में केवल सरकार का कृतज्ञतागुण ही कारण है दूसरा नहीं। श्री रघुनन्दन जी अपनी कृपालुता और कृतज्ञता विचार कर बड़ों की अपेक्षा लघुजनों पर अधिक स्नेह करते हैं। सत्ययुगादि में जो पद लाखों वर्ष तपस्या करने से भी दुष्प्राप्य था वह अब अल्प काल में ही कृपालु जी अनायास देते हैं और जो एकवारगी शरण में आये, उन के तिल भर वा नाम-मात्र के गुण को भी सहस्र सुमेरुसम गुरु जानकर श्री राजीवनयन जी परमपद देते हैं।

यदि सरकार में कृतज्ञतागुण न होता तो कलियुग के जीव स्वप्न में भी कृतार्थ न होते। दास के असङ्ख्य अवगुणों को भी

सरकार नहीं स्मरणकरते, ऐसा अद्भुत स्वभाव कहां किसीमें पाया जाता है? श्रीरघुनाथजी केवल पत्र पुष्प नीर वा मधुर वचन से ही परमप्रसन्न हो जाते हैं। वह अपनी प्रभुता को भी विसार देते हैं, और कहां तक कहाजाय। चूक इसी ओर की सब प्रकार से है, उधर की तो अनिर्वचनीय विचित्र गति है। जबतक मनुष्य को अपने पुरुषार्थ का भान निवृत्त न होगा तब-तक कृतज्ञता का स्मरण दुर्लभ है और कृतज्ञता स्मरण के बिना सरकार की प्राप्ति दुर्लभ है। अतएव मोह छोड़ श्रीरघु-वर्यविभूषण की कृतज्ञता का मनन सभीभांति करना उचित है।

इस गरिष्ठ गुण के अनुसन्धान से हमसबों को यह लाभ हुआः—यह जो सन्देह था कि हमारे सरीखे कुसेवक पर सरकार कैसे रीझेंगे, वह उक्त कृतज्ञता को विचारकर, तुरन्तही निवृत्त हुआ और प्राप्य की प्राप्ति में निर्भयता प्राप्त हुई।

दोहा।

तिलतें लघु गुन मेरुसम, गहत कृतज्ञ कृपाल।
जुगलानन्य निसंक रहु, हर सायत खुसहाल॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रवन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे कृतज्ञतागुणप्रदर्शनं नाम सप्तदशो ऽध्यायः।१७।

अब गम्भीर धीर श्रीरघुबीरजी के परमगम्भीर पीरहारी गम्भीर गुण का निरूपण किया जाता है। जो कार्य छोटा वा बड़ा हो उस के किये जाने को पहले कोई नहीं जानसके यहां तक कि संगी साथी भी नहीं जानने पावें, पीछे सिद्ध हो जाने पर उसे सब कोई जानें, यही गम्भीरता कहलाती है। श्रीमहाराजकिशोर के ऐश्वर्य माधुर्य प्रताप आदि सभी गुण गम्भीर हैं। श्रीमद् वाल्मीकि आदि महामुनिवर्यों ने श्रीमहाराजकुमारजी की गम्भीरता निज निज संहिता में भली भांति वर्णन की है, परन्तु यह थाह नहीं पायी कि आप में कितनी गम्भीरता है। सरकार की गम्भीरता करोड़ों पातालों से भी अधिक अथाह है। ऐसे गम्भीर धीर श्रीरघुवीरजी हैं कि श्रुतियां भी वर्णन करते करते नेति नेति पद से थकना जाहिर करती हैं। रसिकचित्तचन्दन श्रीरघुनन्दनजी यदि कभी किसी पर नाराज़ भी हुए और वह पुरुष अत्यन्त भय के साथ सन्मुख आया तो श्रीमहाराजकुमारजी अतीव प्रिय मधुरवचन और मन्दमुसकान-सहित मनोहर बोलकर उस का चित्त प्रसन्न करदेते हैं, जिस से क्रोध छिपजाता है; जान नहीं पड़ता कि वह नाराजी कहां गयी। ऐसा विचित्र स्वभाव श्रीरघुवरजी का है।

जो यह स्वभाव सुनकर श्री जानकीजीवन में चित्त की वृत्ति लीन न हुई तो इस मानवजन्म को बार बार धिक्कार

है, और ऐसे पण्डितपन चतुरता बुद्धिमानी आदि पर भी धिक्कार है। यदि उनमें स्नेह नहीं बढ़ा तो सब किया हुआ कर्म निष्फल प्राय है। श्रीजानकीजीवनजीकी विचित्र लीलालहरी विलोक कर ईश्वरों की मति भी चकित होकर मोहमें मत्त हो जाती है पामरों की क्या कही जाय। आचार्यों के वेदमय गम्भीर वचनों के तात्पर्य जाने विना मनुष्य व्यर्थ अनर्थमय अर्थ कल्पना करके अपने मत का वाद उठाते हैं, सरकार के अनूप स्वरूप में चित्त प्रविष्ट नहीं करते, ऐसे मतिमन्द हैं। बेचारे क्या करें; बिना श्री सद्गुरु-पदपङ्कज-कृपा के यही दशा होती है।

श्रीजानकीवल्लभजी की गम्भीरता का अनुसन्धान करने से दास के हृदय में स्वाभाविक गम्भीरगुण आविर्भूत होता है, इस गुण के विचारने से अनन्त लाभ होता है। यह जो शङ्का थी कि कदाचित् श्रीरघुनन्दनजी हमारे अवगुणों को कहेंगे तो हमें अत्यन्त लज्जित होना पड़ेगा वह अत्यन्त निवृत्त हुई, लेशमात्र भी न रही।

दोहा।

श्रीमिथिलेससुता-सुखद, गहर गंभीर अपार।
समकृत अगुन न खोलिहैं, गुन गम्भीर निहार॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे गाम्भीर्यगुण-वर्णनं नाम अष्टादशो ऽध्यायः ।१८।

——:*:*:*:——

अब गरहार दिलदार श्री चक्रवर्तीश्वरकुमार की परमचतुरता का निरूपण किया जाता है। श्रीरघुवरजी की चतुरता ऐसी है कि केवल अपने बुद्धि वैभव से विनाप्रयास और विना उपाय के अतिदुःसाध्य कर्म भी करलेना। सब चतुरों की चतुराई निपुणाई श्रीचतुरचूड़ामणि में सिमिट आयी है। कैसा हो बिगड़ाहुआ कार्य क्यों न हो, उसे श्रीमहाराजकिशोरजी अपनी चतुरता से सहज में ही संवार देते हैं। सब ईश्वरों की चातुरी सरकार के चातुर्यसागर में विन्दु सी हो जाती है। सरकार ने अनेक ब्रह्माण्डों की विविध रचना अपनी भिन्न भिन्न चातुरी से की है। सर्वज्ञता और चातुर्य में थोड़ा ही भेद है। समष्टि वस्तु को नित्यलीलाविभूति में एक काल में जानने को सर्वज्ञता कहते हैं और उसीको माधुर्यमयी प्रगट लीला में पृथक् पृथक् स्वादसहित जानने को चतुरता कहते हैं।

श्रीराजकुमारजी ऋक्ष राक्षस बानर देवता पशु पक्षी कीट पतङ्गादि सब को भाषा पढ़े हुए हैं, तभी तो सब की रुचि पालते हैं। सरकार सबदेश की भाषा जानते हैं अर्थात् पारसी अरबी तुर्की कर्नाटी आदि सब में चतुर हैं। श्रीराघ-

वजी सभी कारीगीरी जानते हैं और सब के आचार्य हैं। उनके आगे किसी की माया दम्भ कपट आदि नहीं चलसकती। जो कुछ चेष्टा वह सङ्केतद्वारा करते हैं उस को श्रीलक्ष्मणजी जानते हैं, दूसरे सभा के लोग उस को देख दंग होजाते हैं। ये सब भाव बाल्मीकि में जहां तहां प्रसिद्ध हैं।

इस गुण के अनुसन्धान से दुर्मति निवृत्त हुई और यह जान पड़ा कि परमचतुर श्रीराजकुमार से चतुराई कर पार नहीं पावेंगे। दास कपट दम्भ छोड़ कर शुद्धभाव से भजन करे यही इस का फल है।

दोहा।

चतुरसिरोमनि राम सिय, हिय गुन कपट बिसारि।
भजिय सरलता धारि उर, गुन चातुर्य निहारि॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे चातुर्यगुणप्रदर्शनो नाम ऐकोनविंशोऽध्यायः। १९।

अब श्रीरघुराजजी के स्थैर्यगुण का वर्णन यही है कि श्रीरघुवंशकुमारजी का रूप गुण प्रताप धाम आदि सब एकरस और स्वाभाविक बना रहना, कभी अन्यथा न होना। संसार के भूमिआदि अन्य सब पदार्थों के उद्भव और प्रलय सृष्टि के क्रमसे होते रहते हैं, जिस से वे विनाशी हैं। अतः

विनाश को बिसार अविनाशी राजकुमार में भाव धारण ही सार है।

इस गुण के अनुसन्धान के दो फल हैं। एक तो उपास्य का परत्वनित्यत्वज्ञान, द्वितीय वहां अपनी भी सर्वदा एकरस स्थिति, यही फल है।

दोहा।

थिर रघुवर नामादि सब, चंचल वस्तु जहान।
तातें थिर सों नेह करु, गुन स्थैर्य अनुमान॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते-हिन्दी भाषावार्तिक-प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे स्थैर्यगुणप्रदर्शनो नाम विंशो ऽध्यायः२०।

——:❀:❀:❀:——

अब श्रीरघुवर्यभूषणजी का परमउदारगुण वर्णनकिया-जाता है। पात्र अपात्र और देश काल को विना विचारेही जो याचकमात्र को मनवाञ्छित से अधिक देना यही श्री कौशल्यानन्दनजी की उदारता है। यह इन्हीं में पाईजाती है, औरों में छायामात्र है। श्रीमहाराजकुमारजी की सब सम्पत्ति स्नेही याचक ब्राह्मण भांट नट और देवताओं ने मिल कर भोग की, केवल यशमात्रही युगलसरकार ने अङ्गीकार किया। सरकार को दिनरात देनाही भाता है, क्षणभर भी विना दिये सरकार का मन स्थिर नहीं रहता।

श्री रघुवीर जी ने नित्यविभूति में भिक्षुक का अभाव देख अपनी उदारता की सफलता के लिये लीलाविभूति में प्रकट होने के समय यह संकल्प किया कि प्रकट हो कर सब जीवों को बिना कुछ साधन किये ही अपारभवसागर से अवश्य ही पार कर दूंगा। इस प्रकार का सङ्कल्प जब सरकार के हृदय-कंज से आविर्भूत हुआ, तब धर्मसंस्थापक समस्त वेद संहिता पुराणादिकों के सहित ब्रह्मादि ईश्वर तक आये और हाथ जोड़ सम्मुख हो वार वार विनय करने लगे कि हे सर्व-धर्मज्ञ-शिरोमणे, हे सनातनस्वसेतुरक्षक, आप के औदार्यगुण की अधिकता से यह जो आप का विलक्षण संकल्प हुआ है वह किसी प्रकार योग्य नहीं है, इस से आप की स्थापित मर्य्यादा मिट जायगी। जिस में रागद्वेष धर्म अधर्म नरक स्वर्ग शुभ अशुभ बने रहें वही काम सरकार दोनों पर कृपा कटाक्ष करके करें। और जो आप के भक्त वा प्रपन्न (शरणा-गत) थोड़े भी हों उन्हें आप अपने पद में लीन करें, यही हम लोगों का परम अभीष्ट है। यह स्नेह-विनयसानी वाणी सुन कर परमकृपालु श्री रघुनन्दन जी ने उन सबों का आश्वा-सन कर बिदा किया। इस के पीछे आविर्भूत हो अनेक विचित्र लीलाओं द्वारा अमितजनों को अपने पद में आरोहण कराया और श्री कृपालु जी ने श्री अवधमण्डलमात्र के वासी ऊंच नीच कीट पतंग सबों को नित्य विभूति में अनायास ही

प्राप्त कराया। देखिये कि यद्यपि वेदादिकों ने (शास्त्र मर्यादा भङ्ग के भय से) बहुत प्रार्थना की, तोभी अपने उदारतागुण के आवेश में आ अवधवासियों को संग ले ही गये। ऐसी उदारता न तो किसी ईश में न परेश में न अवतारों में ही पायी जाती है। अतः जो विवेक-प्रज्ञा-सम्पन्न हैं उन के यही परम-उदार-चूड़ामणि उपास्य हैं और होने योग्य हैं और तो सभी कृपणतायुक्त हैं, वे उपासकों के मनोरथों को क्या पूर्ण करेंगे?

इस गुण के अनुसन्धान से "जो बड़े बड़े महान् हैं उन्हीं को अपनो उदारता से अपनाकर श्रीरघुनन्दन जी उन के मनोरथ पूर्ण करते हैं, हम सरीखे अल्पसुकृतियों के मनोरथों को यथार्थतः नहीं पूरा करेंगे" यह शङ्का बहुत दूर उड़गयी, जैसे प्रवलवायु से तूल आदि खोजने पर भी नहीं मिलते। यदि उदारता गुण को बिचारें तो अपनो और कृपणलोगों की कृपणता उपासक के मन से अवश्य ही निवृत्त हो जाय। येही और अन्य भी इस के अनेक फल हैं। इन बातों पर दृढ़कर के विश्वास करना चाहिये।

दोहा।

परमउदार बिहारपर, परतम राजकुमार।
भजहि कृपनता दूरि करि, सुखसाहिता गुनसार॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुण दर्पणे श्रौदार्यगुणवर्णनो नाम एक विंशतितमोऽध्यायः। २१।

——:०:——

अब कोशलेशसूनुके परम अनूप धैर्य्य गुण का वर्णन किया जाता है। कामक्रोधादि की प्रबलता से जनित उद्वेग के वशीभूत और उन से कभी बाध्यमान न होना यही धैर्यगुण श्री महाराजकिशोर जी का विवेकी जन कहा करते हैं। अनेक प्रकार की शक्तियां प्राप्त हैं, तो भी धैर्यपूर्वक कार्य सिद्ध करना शीघ्र नहीं और जो काम करना वह सब धैर्ययुक्त करना यही परम धैर्य है।

यह विचारने की बात है कि अनेक नास्तिक, पाखण्डी, दैत्य, दानव उनका अनेक प्रकारसे खण्डन भी करते हैं, तोभी अपने धैर्यगुण के प्रभाव से कुछ भी उद्वेग नहीं पाते। जैसे किसी मतवाले हाथी में हजारों मच्छड़ लगने पर भी वह तनिक उद्वेग नहीं पाता ऐसेही एकदेश-दृष्टान्त से जानना चाहिये। यदि वह (सरकार) नाराज होते और थोड़ा भी उद्वेग पाते तो तीनों लोक में वे (दुष्टगण) नहीं रहने पाते, किन्तु ऐसा नहीं हुआ है। इसी प्रकार श्री अवधकाण्ड में महारानी कैकेयी जी के अतिकठोर मर्मवेधी वचनों को सावधान हो धैर्यपूर्वक सुनते रहे। और भी अनेकठौर युद्ध-

काण्डामदि में श्री महाराजनन्दन जी का धैर्य विदित है, कहां तक लिखाजाय। यह धैर्यगुण परमभाग्य का फल है।

श्रीजानकीवल्लभजी के सभी गुण विलक्षण हैं, वे श्रीमद् बाल्मीकीय में प्रसिद्ध ही हैं। श्रीराघवजी अपने गुणों से सबों का मनोरञ्जन करते हैं, सदाही रसखान मन्द मन्द मुसकान कर के पहले आपही कुछ मनोहर रससानी वाणी बोलते हैं, परुष वा कठोर वचन तो किसी ने स्वप्न में भी श्री महाराजनन्दनजी से किसी काल में नहीं सुना तथा किसी ने मिथ्या सम्भाषण भी कभी नहीं सुना। श्री रघुनन्दनजी सब लोगों के परम प्रियतम हैं, सब के हितकारी हैं, कभी किसी का दोष नहीं देखते। किसी में थोड़ा भी गुण हो तो उसे बहुत मानकर ग्रहण करते हैं यही उन का सहज-स्वभाव है। श्रीरघुनन्दनजी सर्वज्ञ और अन्तर्यामी भी हैं, तो भी निजभक्तों के करोड़ों अपराधों के जानने में महा-मुग्धसम होजाते हैं। आप के गुण-स्वभाव की बलिहारी है। किस अधम को ऐसा सुन्दर ठाकुर नहीं भावेगा?

इसगुणके अनुसन्धान से यह अलभ्य लाभ हुआ कि नवीन भी बड़ा अपराध हो, पर शरणागत होनेपर क्षमा की जायगी, दण्ड नहीं दिया जायगा। श्रीराघवजी धैर्यवान हैं इसपर सुग्रीवजीका प्रसङ्ग जानना चाहिये। धैर्यगुण के

विचारनेवाले को भजन में कभी विघ्न नहीं होगा, दृढ़ विश्वास रखना चाहिये ।

दोहा

धीर वीर रघुवीर गुन, धीरज हृदै विचारि ।
तजहु सकल उद्वेग निज, जुगलानन्य सम्हारि ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे धैर्यगुणप्रदर्शनो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२।

—:❀:❀:❀:—

अब श्रीमहाराजकुलमण्डनजी का शौर्यगुण निरूपण किया जाता है । सब से निर्भय रहना औ युद्धादि में अत्यन्त उत्साह रखना यही क्षत्रियोत्तमों का शूरता-गुण है । यह विना यत्न के ही परम गति तथा सुयश का देनेहारा है, सरकार में तो यह शूरता सदा एकसी और कुलानुरूप स्वाभाविक है । करोड़ों देव दानव दैत्यादि संग्राम में एक ओर से जुटते और एक ओर केवल श्रीरघुनन्दनजी रहते थे, तो भी सब क्षण ही भर में सहज ही में हारजाते थे । श्रीरघुवीरजी के विरोधी को ब्रह्माआदि कोई नहीं रख सकते, औरों की कौन गिनती है । यह बात जयन्तरावणादि के प्रसङ्गों में विदित है । अपनी शूरता श्रीमुख से युद्धकाण्डादि में कही भी है । आप के धनुष के टङ्कार का प्रताप अमित और अपार है, उसे कौन कह

सकता है। एक वार के टङ्कार करने से असङ्ख्य राक्षसों का नाश होता है।

सरकारकी यह शूरता स्मरण करने से एक तो यमराज के सब से प्रबल दण्ड का भय निवृत्त हुआ, दूसरे परमार्थ की ओर की अपनी कादरता भी दूर हुई, यही परम फल है।

दोहा।

सूरासिरोमनि सर्वविधि, रघुकुलमनि सुखकंद।
तू तज जड़ कादर्यता, भज पदपंकज-द्वन्द॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे शौर्यगुणप्रदर्शनो नाम त्रयोविंशो ऽध्यायः। २३।

—०—

अब आश्रितार्तिहरण जी के वीर्यगुण का वर्णन किया जाता है। पुरुषार्थसहित प्रतिदिन बढ़ती हुई जो एकरस अखण्ड शक्ति, वही वीर्यगुण है। वीर के भावको वीर्य कहते हैं। पांचप्रकारके वीर होते हैं त्यागवीर, दयावीर, विद्यावीर, पराक्रमवीर और धर्मवीर। सरकार पांचो वीरता से पूर्ण हैं और सभी वीर रघुवीर पद के अन्तर्गत हैं।

इस गुण के अनुसन्धान के अनेक फल प्राप्त हैं, विशेष

करके इस शङ्का की निवृत्ति, कि मेरे रक्षक सरकार कभी क्षीणशक्ति न हो जावें ।

दोहा ।

परमबीर रनधीर श्री, रघुकुल-मंडन प्रान ।
अभयकरन संसयहरन, तारन तरन सुजान ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषा-वार्तिक-प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे वीर्यगुण-प्रदर्शनो नाम चतुर्विंशो ऽध्यायः । २४ ।

—०—

अब श्रीचक्रवर्तीश्वर-कुमारजी के तेजगुण का निरूपण कियाजाता है। अपने अधीन अनेक परिकर (पार्षद वा परिवार) तथा चतुरङ्गिणी सेनाओं की अपेक्षा न करना केवल औरों के उद्दीपन के लिये रखना अर्थात् अपने ही तेज से सब प्रकार का विजय करना और किसी से किसी प्रकार न हारना, और प्रताप का प्रभाव ऐसा कि करोड़ों सूर्य से अधिक प्रतापी और बड़े से बड़े प्रतापी भी दृष्टि बराबर नहीं करसकें, और जो कभी नहीं देखागया हो वह भी देखनेपर देखाही सा जान पड़े, इत्यादि अनन्त-लक्षण-सम्पन्न तेजगुण है। यह गुण परमतेजस्वि-अग्रगण्य श्रीराघवजी में ही यथार्थतः देखा जाता है ।

वह श्रीराघवजी भक्तों को पूर्णचन्द्र से भी अधिक मोद-प्रमोद देते हैं और अभक्तों को कालानल के समान देखपड़ते हैं। श्रीजानकीबल्लभजी के परममनोहर कटाक्ष श्रीमारुत-नन्दनजी के तो प्रतिक्षण महाशीतल और परमानन्दवर्द्धक हैं, सागर को उनसे बहुत रोष जानपड़ता है, श्रीसुग्रीवजी को वे अनुरक्त करते हैं, राक्षसों को वे पूर्ण कोपमय देखपड़ते हैं, श्रीसुमित्रानन्दन जी को परमस्नेहसम्पन्न जानपड़ते हैं, इसी प्रकार अधिकारियों के अनुसार सब अङ्गोंकी रीति विचारनी चाहिये।

सूर्य ब्रह्मादि सब देवताओं को इसी तेजका कुछ लेश पाकर तेजस्वी जानिये, औरोंको क्या गिनती है। इस तनु-तेजका प्रकाशही वेदान्तप्रतिपादित अखण्ड एकरस चिदा-काश ब्रह्म कहलाता है। अत्यन्त विवेकीही इसतेज का रहस्य जानते हैं किन्तु जो पाण्डित्याभिमानी हैं, वे क्या जानें। इसी तेज के लवलेश से अखिल ब्रह्माण्डकी रचनादि होती है, अब इस तेजका प्रताप कहांतक कहाजाय।

इस तेजगुण के अनुसन्धान का फल यह है कि रघुनन्द-नजीके पदपङ्कजोंमे अति स्नेह करनेवालों के चित्त की यह शङ्का कि हमारे भीतरकी कामादि अनेक दुर्वासनाओं तथा बड़े बड़े बलिष्ठ अविद्यामय महा-तम-रूप निशाचरसमूह का विनाश

कैसे होगा, तुरन्त निवृत्त होती है, जैसे गरुड़ के भय से पन्नगगण दूर भागें। यह तेजगुण सदा विचार कियाजावे तो अवश्यही दास परमतेजोमय हो जावे। यह अनुपम गुण आश्रितोपयोगी है।

दोहा।

तेजस्वी तेजायतन, तेजद ईस परेस।
सेइय मन क्रम वचन ते, तमनासन हित बेस॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे तेजोगुणवर्णनो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।२५।

—०—

अब श्रीरघुवीरजी के बलगुण का निरूपण कियाजाता है। बल उस गुण को कहते हैं कि अत्यन्त परिश्रमका कार्य करने पर भी तनिक भी परिश्रम नहीं जानपड़े। बलधातु का अर्थ बन्धन भी है। अर्थात् वह (बल) अपनी माया से सब को वेष्टन (बन्धन) युक्त किये हुए है। उससे ब्रह्मादि देवगण भी बंधेहुए हैं, जैसे वृषभ नाथेहुए हों। सभी उसी में गुथे हुए हैं, जैसे सूतमें मणिगण। श्रीमहाराजकुमारजी का बल माधुर्य-ऐश्वर्य दोनों से विलक्षण है। विष्णु आदि से अवध्य बड़े बड़े राक्षसों को आपने अपने बलसे क्षणभर में धूर में मिलादिया, यह माधुर्यमय बल है।

इस गुण के अनुसन्धान से यह संशय निवृत्तहुआ कि हमलोग अनन्य सरकारी हैं, हमारे रक्षण धारण पोषण में कभी श्रम ग्लानि वा वैराग्य न हो जाय ।

दोहा ।

बलगुन रघुवर मनन करु, त्यागि अचल जग संग।
रे मन इह सिद्धान्तमत, सर्वोपरि नवरंग ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे बलगुण-प्रदर्शनो नाम षड्विंशोऽध्यायः ।२६।

—०—

अब परममनोहर श्रीजानकीबल्लभजी के सौन्दर्यगुण का निरूपण किया जाता है। परमसौन्दर्यका प्रथम लक्षण यही है कि अङ्गों में यथायोग्य जहां जैसा अनुपम माधुर्य चाहिये वहां वैसा भलीभांति रहे और मेघोंकी घटा के समान प्रतिक्षण नवीन छटा का उदय होतारहे। ऐसाही सौन्दर्य श्रीसुकुमाराङ्गजी का है, जो परमसुन्दर कामादिकों का भी परममाननीय है। द्वितीय लक्षण इसका यह भी है कि प्रत्येक अङ्ग परस्पर एक से एक मनोहर अद्भुत रंगीन और विलक्षण हैं, जहां ही चित्त मन वा नेत्र जाते वहांही अंटक जाते हैं। तीसरा यह भी लक्षण उक्त अनूठे सौन्दर्य का है कि जिसी अङ्गपर दृष्टि तनिक भी पड़ी उसी अङ्ग से परात्पर परमानन्द अत्य-

न्त शीघ्र अनायास ही प्राप्तहुआ। चौथा यह कि जो अंग देखा उसे छोड़ कर मन द्वितीय अङ्ग देखने को नहीं चाहता, पांचवां मनहरण रसभरण लक्षण यह है कि कोई अङ्ग न्यून अधिक नहीं है। सामुद्रिक-शास्त्रानुसार सभी सम हैं, सभी सुचिह्नों से पूर्ण हैं, दोषों से रहित हैं, और परम दिव्य भव्यगुणमय हैं। करोड़ों चिन्तामणि-कल्पतरु से भी अधिक गुण-सम्पन्न ये पांचोप्रकारकी सुन्दरता पतिव्रतापत्नीसी श्रीरघुनन्दन जो के अङ्गों की ही होरही है, धर्म चेतकर अन्यत्र नहीं जाती; क्यों कि अन्य सभी अयोग्य कूप से हैं। यही जान॰ पड़ता है कि चित्तचोर श्रीमहाराजकिशोरजी ही एक यथार्थ सुन्दर हैं, और सब नाममात्र के हैं।

इस सौन्दर्यगुण के प्रकाश के लिये श्रीमद्रामायण सुन्दर॰ काण्ड के श्लोकों का वार्तिक अर्थ लिखाजाता है जो श्रीजा- नकीजी से श्रीहनुमानजी ने कहा था। श्रीकिशोरीजी ने कहा कि यदि तुम मेरे श्रीप्राणप्रियजी के निकटवासी हो, तो उन के गुण तथा रूपादि का वर्णन करो। इस में ध्वनि यह है कि जो उपासक वा सम्बन्धी होगा वह अङ्गों और गुणों का वर्णन ठीक ठीक करसकेगा, इतनेही द्वारा श्रीस्वामिनीजी ने स्नेहियों का लक्षण जनादिया। उन की परमरससानो वाणी सुनकर श्रीहनुमानजी मधुरगिरा से बोले। पहले तो सामान्य रीति से लक्षण कहा, पीछे नखशिख का निरूपण किया; यथा—

हे श्री स्वामिनीजी, रसिकचित्तचन्दन श्रीरघुनन्दनजी के नयन मञ्जुकञ्जके निरादरकरनेहारे कजरारे रतनारे शील-सागर सुधासुधारे प्याराप्यारे विशाल डहडहे मनहरण और सुख के अयन हैं, रूपयौवनादि-गुण-सम्पन्न रसमय विग्रह है, उच्च अनुपम और सुपुष्ट कन्धे हैं, भक्तभयहारी और जानुलम्बी दीर्घ भुजा हैं, त्रिरेखा और स्वच्छभूषणगण-सम्पन्न कम्बुसदृश विलक्षण कण्ठ हैं, कोटि चन्द्रों का भी अनादर करनेहारा सुखसदन वदन है, जत्रु (ग्रीवाके समीपकी पसलियां) गूढ़ (मांसभरी पुष्ट) हैं, राम यह अभि-राम नाम सुन्दर सर्वोपरि परमपावन कामपूरक और सर्व-लोक-विदित है ।

हृदय मुट्ठी और पहुंचा ये तीनो जिस के स्थिर (दृढ़तर) होते हैं, वह राजा होता है । भौंह, बाहु और मेढ़ (अण्ड-कोश) ये तीनो जिस के लम्बे होते हैं वह धनी होता है । केशों के अग्रभाग वृषण (अण्डकोश) और जानु (घुटने) ये तीनो जिस के सम हों, वह राजा होता है । कुक्षि नाभि हृदय ये जिस के कांपते न हों, उच्च हों, मांसल हों, वह पृथ्वीपति होता है । नेत्र, नख हाथ-पांव के तलवे ये तीनो जिस के लाल हों, वह सदा सुखी रहता है । चरणरेखा केश और लिङ्गमणि ये तीन जिस पुरुष के सचिक्कण हों वह महा-भाग्यवान् देखाजाता है । स्वर गति और नाभि ये तीनों

जिस के गम्भीर हों, वह बड़ाई के योग्य होता है। उदर कण्ठ और मस्तक इन तोनो ठौर जिस के बलि पड़ी हों वह बड़ाई के योग्य होता है। जिस पुरुष के पांव का तलवा, तलवे की रेखा और स्तनों के चूचुक (मुख) गम्भीर (भोतर ही डूबेहुए, ऊंचे नहीं) हों वह बड़ाई के योग्य होता है। ग्रीवा इन्द्रिय (लिङ्ग) पीठ और जांघ ये जिस के छोटे हों वह पूजनीय होता है। मस्तक जिसका गोल विशाल छत्राकार और तीनआवर्तयुक्त हो, वह राजराजेश्वर होता है। जिसके अङ्गुष्ठ के मूल में चार रेखाएं हों वह चारो वेदों का वक्ता होता है, (एक एक रेखा एक एक वेद की जानकारी जाहिर करती है।) जिसके ललाट में चार रेखाएं हों उसकी आयु एक सौ वर्षों की होतो है। (जिसके ललाट में तीन रेखाएं हों उसकी आयु एक सौ वर्ष की होती है और जिसकी दो रेखाएं हों उसकी आयु साठ वर्ष की होती है और जिसकी एक रेखा हो वह बीस वर्ष जीता है) जिसके तलवे में ध्वज वज्र अंकुश शङ्ख आदि रेखाएं हों और अपने हाथ से चार हाथ का उसका शरीर हो, वह मनुजेन्द्र होता है। (२४ अंगुल का एक हाथ होता है श्रीरघुनाथजी में ऐसे ही अपूर्व सभी सुलक्षण हैं।) बाहु जानु ऊरु गण्डस्थल ये जिसके सम हैं वह भाग्यमान होता है। दोनो भौंहें दोनो नासापुट, दोनों नेत्र, दोनो श्रवण, दोनो ओष्ठ, दोनो चूचुक (स्तनाग्र) दोनो पलकें, दोनों पहुंचे,

दोनो जानु, दोनो अण्डकोश, दोनो कटि, दोनो हाथ, दोनो पांव, दोनो बगल ये (चौदहो जोड़े) जिसके सम हों, वह राजा होता है। जिसके चारो सुन्दर दांत मनोहर और कुछ ऊंचे स्पष्ट झलकते हों, वह मङ्गलरूप होता है। ओष्ठ जिसके बिम्बाआदि की अरुणाई के हरण करनेहारे हों, हनु मांसपूर्ण दिव्य और विचित्र हो, नासिका दीर्घ और उच्च हो, वह पुरुष श्रेष्ठ होता है। वाक्य मुख नख रोम त्वचा ये पांच जिसके सचिक्कन हों, वह पुरुष श्रेष्ठ होता है। दोनो हाथ की चार और दोनो पावों की चार हड्डियां (दोनो हाथ, बांह, जंघा ऊरु) ये आठो जिसकी लम्बी हों, वह भाग्यमान् होता है। मुखमण्डल, नेत्र, (केवल) मुख, जिह्वा, ओष्ठ, तालु, स्तन, नख, कर, पद ये दसो जिसके कमलसदृश हों वह श्रेष्ठ होता है। उर (छाती) शिर ललाट ग्रीवा बाहु नाभि पांव पीठ कान कांधा ये दशों जिसके बड़े बड़े हों, वह सुखी रहता है। जो तेज यश श्री इन तीनो से युक्त हो वह श्रेष्ठ होता है। जिसके माता-पिता के दोनो कुल शुद्ध हों और कांख पेट नाक कांधा ललाट ये छओअङ्ग ऊंचे हों वह सबों को सुख देने वाला होता है। अंगुली के पोर केश रोम नख त्वचा शेफ ( ) इत्यादि जिनके पतले हों, वे मनुष्य दीर्घजीवी होते हैं। डाढ़ी मूंछें जिनको स्फटिक सी चमकीली सूक्ष्म (बारीक) हों सुन्दर और नरम हों, दृष्टि और बुद्धि भी

सूक्ष्म हों वे सुखी रहते हैं। जो प्रातः मध्याह्न सांझ तीनो-
कालमे क्रमशः धर्म अर्थ काम का सेवन करता है वह सुखी
रहता है। इत्यादि शुभ लक्षण जो श्री रघुनन्दनजी में सदा
निवास करते हैं, संक्षेपमें श्री मारुतनन्दनजी ने श्रीकिशोरीजी
से वर्णन किया; तब वह बहुत प्रसन्न हुई ।

इस सौन्दर्यगुण के अनुसन्धान से सब मनोरथों का
लाभ होता है, विशेष करके मन नेत्र और बुद्धि आदि की एक'
रस स्थिरता होना यह परम लाभ है और अन्य सौन्दर्य्यों
को त्याग कर इसी श्रीराघवजी के नख शिख सौन्दर्यरस का
दृढ़नियमपूर्वक पान करना उचित है ।

दोहा ।

नख सिख नव सौन्दर्यता, करहिं पान व्रत ठान ।
जुगलानन्य न याहिसम, अपर साधना मान ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषावार्तिक-
प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सौन्दर्यगुणवर्णनो नाम सप्त-
विंशोऽध्यायः । २७ ।

अब अनुपमछविधारी श्रीजानकीविहारीजी के परमरस-
सागर उजागर मधुर माधुर्यगुण का निरूपण किया जाता है।

जो समस्त स्वादुओंकी अवधि हो, पित्तकफादि रोगों का नाशक हो और रसमय हो, उसको मधुररस कहते हैं। उसी के गुण को माधुर्यगुण कहते हैं, जो परम रसिक रंगीन भावुकों का जीवनरूप है। अनेक प्रकारकी वस्तुएं लोक और वेद में मधुर देखपड़ती हैं, उनसबों की मधुरता श्रीकोशलेश-कुमार जो की मधुरता देखकर लजाजाती है। मोचाफल काम्बोज-दाडिम, आम, खजूर, पनस, नारिकेल, दाखपाक, मधु, इक्षु, गुड़, शर्करा, चोनो, मिसरी, कन्द, दुग्धपाक, सुधा इत्यादि अनन्त पदार्थ मधुर कहाते हैं; परन्तु जब श्रीरघुवीरजीकी मधुरता प्राप्त होती है तब वे सभी सीठे पड़जाते हैं। तात्पर्य यह कि वे सभी अनित्य तथा प्राकृत हैं, उन में जो कुछ मधुरता का आभास है वह केवल श्रीरंगोन गुणसागरजी के मधुरगुण के रंचक अंशसे प्राप्त है, वस्तुतः उन वस्तुओं की अपनी मधुरता कुछ नहीं है।

जबतक इस नाम-रूप-माधुरी में चित्त आसक्त नहीं होता, तबतक लोक वेद सब मधुर से भासते हैं। श्रीजानकी-प्राण-जीवनजी अतिमधुर हैं, वह अपनी मधुर दृष्टि के निक्षेप से भृत्यका भय अनायासही दूर करदेते हैं। प्राणहारी कठिनतर हलाहलज्वाला-स्वरूप करालकाल को सहजहीमे शान्त कर देने के लिये श्रीरामनाम श्रीरामधामादि सभी सुधाधारामयी मेघमाला है। मानुषतन पाकर ऐसी सुधा का जिनने नहीं पान

किया, वे राक्षस से भी सौकरोड़गुण अधिक पापात्मा हैं, वे सदा ताप और कालव्याल के ज्वालामाला से तपेंगे। स्त्री पुरुष नपुंसक वा चराचर जिस किसीने इस परमअमृत का पान किया उस के जरामरणादि रोग-शोक अनायासही और निस्सन्देह मिटजाते हैं।

मधुर मनोहर श्रीरघुनन्दन जी का अनुसन्धान करते हुए मनुष्य जहां चाहे वहां रहे, उसको संसारताप की बाधा सपने में भी नहीं होती। सुधा से भी सौगुनी अधिक जीवन-मूरिसम श्रीरामनाम तथा श्रीरामरूपादि जिस के हृदयकञ्ज में तनिक भी प्रविष्ट हुआ, वह चाहे तो प्रलयकाल के कालानल के मुख तथा हलाहल में भी निर्भय होकर प्रवेश करे तो तनिक भी उसे कष्ट नहीं हो सकता। श्रीरघुनन्दन जी श्रृङ्गाररस की मूर्ति हैं, अतः उन में परममधुरता सहज ही है, और वह श्रृङ्गाररस के राजा हैं, अतः मधुरता विशेष है ऐसी माधुरी देखकर भी, श्रीजानकी जी से विमुख होकर, जो नायिकाएं उनसे रमण करने की इच्छा करती हैं शूर्पणखा की गति पाती हैं, इस में सन्देह नहीं। अतः तदनुकूल रहना ही उत्तम धर्म है। श्री रघुनन्दन जी से विरोध कर के जो केवल श्रीजनकनन्दिनी जी में स्नेह करते हैं वे भी रावण की गति पाते हैं। अतएव युगलोपासना सर्वोपरि उचित है।

इस परमदिव्यगुण के चिन्तन से एक लाभ तो यह है कि

रूखे चित्त में भी सरसता की प्राप्ति, दूसरे अन्य मधुरता में इस स्वाद का अभाव, तीसरे स्नेहहीन केवल शुष्क वैराग्य का त्याग और युगलमाधुरी के चिन्तन में अत्यन्त रुचि अनुराग इत्यादि अमित अमल फल हैं, सब वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकेगा ?

दोहा ।

मधुर मनोहर मोदमय, मंजुल मानसहंस ।
गुन माधुर्य अनूप सुठि, रसिक अनन्य प्रसंस ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा-वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे मधुरगुणप्रदर्शनो नाम अष्टाविंशोऽध्यायः । २८ ।

—०—

अब अनूप रूपगुण का निरूपण किया जाता है। नवीन प्रवीण श्रीसुखमासिन्धु जी के रूपगुण का यही लक्षण है कि जहाँ किसी की दृष्टि अचानक भी पड़ी कि फिर उस का हटना कठिन हुआ, चर और अचर सभी उस की ओर आकृष्ट हो जाते हैं, रसिकों की कौन कहे। जैसे चुम्बक को देख कर लोहा जड़ से ही उखड़ कर उस में स्वयं लग जाता है, ऐसा ही स्वभाव इस रूप का है। जैसे दीपक को देखते ही उसमें पतंग (नर-मादा सभी)

लीन हो जाते हैं वैसे ही नारी पुरुष सब श्री महाराजनन्दन जी में रमण की इच्छा करते हैं। अर्थात् नर के रूप में नर की काम चेष्टा नारीभाव से नहीं होती, पर श्रीराजीवनयन जी को देखते ही महा महा मुनिज्ञानी योगी और रूखे चित्तवालों ने भी स्त्रीभाव को प्राप्त हो कर रमण की इच्छा की है। ऐसी अद्भुत रूपछटा यहां (सरकार में) ही पायी जाती है दूसरे में तो कहीं यह रहस्य सुनने में भी नहीं आया, अतः यह रूप विलक्षण मदनवाण के समान है। औरों के रूप की जो कुछ छटा देवताओं और अवतारों में देख पड़ती है वह केवल श्री महाराजकुमार की ही बकसी हुई है। श्रीरघुनन्दन जी में तो सरस रूप की क्षणक्षण नवीन छटा स्वयंसिद्ध और एकरस है, अतएव नेत्रों की सफलता इसी रूप के अवलोकन में है।

रतनारे कजरारेनैनवारे द्विभुज श्यामसुन्दर की उस रसीली मनोहर मूर्ति में ऐसा रूपगुण स्थित है कि जिस में हरित-मणिश्याम घनादिकों की असंख्य सुखुमाएं वारी जाती हैं। यद्यपि भगवान की असंख्य मूर्तियां हैं परन्तु श्रीराघव जी की नखकांति की भी समता उन रूपों में नहीं पाई जाती, और की यहां क्या चल सकती है। केवल श्रीरघुनायक जी की मनोहर मूर्ति ही रसिकों के स्नेह करने योग्य है, जो नख से शिखापर्यन्त शुद्ध सच्चिदानन्दमय है और जिस में देही-देह का विभाग नहीं है। वे केवल मतवादरूपी अन्धकार में पड़े हुए हैं

जिन ने इस छवि को स्वप्न में भी नहीं देखा है और जो कुतर्कवादी हैं। इन के नख की छटा ही अखण्ड अनामय व्यापकगुण-सम्पन्न ब्रह्म है, अतः इन के समान यही हैं; अनुपम होने से किस की उपमा दी जावे।

वे ही धन्यधन्यतम हैं जो इस रसमय विग्रह के अवलोकन की चाह (अभिलाष) किया करते हैं, पर नीचों के सिरताज वे हैं जिनके मन-वचन इनसे विमुख हैं। जो सबगुणों से युक्त हैं वा बड़े महान लोकों में प्रसिद्ध हैं, परन्तु इस दर्बार से बाहर हैं, वे शूकर-श्वान से भी अधमतर हैं। जिन को चितचोर श्रीराजकिशोर जीने दृगकोर से नहीं देखा और जिसने सरकारकी स्तुति प्रार्थना नहीं की, वे नीच पाजी सब लोगों में निन्दा के भागी होते हैं, अर्थात् उनकी प्रशंसा कहीं नहीं होती और स्वयं भी निन्दा से भरे रहते हैं। प्रायः सभी श्रीमहाराजकुमार के गुणतन्तुमें बंधे रहते हैं किन्तु एक अधमाधम आत्मघाती नहीं, क्यों कि उन को वह रूप दुर्लभ होता है। श्रीलक्ष्मणादि सभी भ्राता परस्पर समानश्रेणी के हैं, परन्तु सरकार के गुणों के वश होने के कारण वे अपने को दास से भी लघु मानते हैं।

इस रसमय रूप-गुण के अनुसन्धान से रूप में चित्त की अत्यन्त संलग्नता होती है और अनधिकारियों का

अन्य सब रूपों से चित्तका उच्चाटन और विस्मरण होजाता है, यही अपूर्व परम लाभ होता है।

दोहा।—

रूप अनूपम जानकी-जीवन सब सुखसार।
जुगलानन्य बिहाय भ्रम, करिय सदा उरहार॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषावार्तिक-प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे परमसिद्धान्ते रूपगुणनिरूपणो नाम एकोनत्रिंशत्तमो ऽध्यायः। २९।

अब सुखरसखानि श्रीजाकीनजानिजीकी रसमयी मनोजमोहिनी मूर्ति के सुकुमार अंगोंकी उमंग-तरंगों में अगुण-सगुणकारण-भूत जो अद्भुत छः गुण विराजमान हैं, वर्णन कियेजाते हैं; जिन के श्रवणमनन से आधि-व्याधि और उपाधियां निवृत्त होती हैं। औज्ज्वल्य, नैर्मल्य, स्वच्छत्व, शुद्धत्व, सुखमा और देदीप्यमानत्व येही छ गुण हैं। विचक्षणगण इन के लक्षणों को जानकर अनुक्षण मनन कियाकरते हैं।

औज्ज्वल्यगुण तमोगुण का विरोधी अर्थात् नाशक और प्रकाशक है। तात्पर्य यह कि जहां तम है वहां औज्ज्वल्य नहीं और जहां औज्ज्वल्य है वहां तम का अभाव रहता है। निर्मलता का विरोधी अर्थात् बाधक कुत्सितत्व है, जहां युक्ति ज्ञान विवेक सभी व्यर्थ होते हैं, इस से निर्मलता जाती रहती

है और मलिनता छाजाती है। रजोगुण के सम्बन्ध से स्वच्छता जाती रहती है, क्यों कि यह विक्षेपमय गुण है। अभक्ष्य मांसादि और अपेय मद्यादि के योग से शुद्धता नष्ट होती है। वृद्धता और श्वेतकेशादि से सुखमा नष्ट होती है। भक्तिरहित पराधीनता से देदीप्यमानत्व नष्ट होता है। ये छः अवगुण उपर्युक्त छ गुणों के निवर्तक हैं। श्रीरामचन्द्रजी के गुणोंपर इनदोषों की छाया स्वप्न में भी कभी नहीं पड़ती, क्यों कि वह सब प्रकार से दिव्य हैं।

उज्ज्वलता तो सरकार में चन्द्रमा से भी करोड़गुण अधिक है। निर्मलता रसवन्त सन्तों के मन से भी बढ़ीहुई और शरदकाल के मेघरहित आकाश से भी अधिक है। स्वच्छता स्फटिकमणि से भी कहीं बढ़ी हुई है। मायारचित विषयादिकों का लेश भी आप में नहीं है, क्यों कि शुद्ध हैं; बरन् उन्हीं से शुद्धता उत्पन्न होती है। देहादिजनित क्लेश, कर्म, कर्मफल, और कर्मवासना ये थोड़ी भी जिस में नहीं वह परेश है, ऐसा योगसूत्रमें लिखाहुआ है। ऐसा लक्षण पूर्णपूर्ण यथार्थरूप से केवल परात्पर श्रीमहाराजसूनु में भली भांति पायाजाता है। सुखमा परम कान्ति (शोभा) को कहते हैं, वह श्रीमद्रामायणकी उक्तियों से श्रीरघुनन्दनजी में सनातन और एकरस पाई जाती है। मुनिजन के मन श्रीसीतेशजी के अनन्त गुणगण के मनन करनेहारे हैं। इन्हीं गुणों

के दो एक छींटे जिस में पड़गये वह ईश्वर कहानेलगा। सरकार अपनी अङ्गप्रभा से करोड़ों ब्रह्माण्डों को प्रकाशित करते हैं, आप श्रीनिकुञ्जबिहारीजी सदा नित्य निर्मल अखण्ड श्रीसाकेत धाम में रासादिक्रीड़ाओं में तत्पर रहा करते हैं, इन सबों पर प्रमाण श्रीवाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट है, वहीं से जानना चाहिये। समस्त वासना-बीजों का निरास करके सर्व-सद्गुणशाली श्रीवनमालीजी के रूपनाम में प्रीति प्रतीति सब मुमुक्षुजीवों को करनी चाहिये। सब को यही सुनने कहने मननकरने और अभ्यासकरने योग्य है।

उक्त छः गुणों के अनुसन्धान से नानाप्रकार के फलों का लाभ होता है, विशेषकरके तो विरोधियों की निवृत्ति यही परम फल है।

दोहा ।

षट्गुन खटपट हरन हित, चटपट करु चितचाव ।
लटपट विषय विकार तजु, अटपट विनु दृढ़भाव ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा-वार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे षड्गुणनिरूपणो नाम त्रिंशोऽध्यायः।३०।

अब सुखसागर नटनागरजी की सुगन्धता का निरूपण कियाजाता है। श्रीरघुराईजीकी मनभाई सुरभिता अत्यन्त आश्चर्य के सहित स्वमति के अनुसार वर्णन की जाती है।

जिन अङ्गों के सुगन्धलेश से अधिष्ठाताओं के सहित अखिल ब्रह्माण्ड सुगन्धित रहते हैं, ऐसी सुरभिता जगवन्दन रसिक-चित्तचन्दन श्रीराजनन्दनजी की है। और सबजीव तो दुर्गन्ध-युक्त हैं। कोई छाग के सम, कोई मेषसम, कोई गजसम, कोई भैंसासम, कोई मीनसम, कोई रेतसम, कोई छुछून्दर के समान दुर्गन्ध-अङ्ग-धारी हैं। सब मनुष्यजाति दुर्गन्धित हैं। इनसबों को श्रीरघुवंशमणिजीकी सेवा का अधिकार परत्व वा माधुर्य किसी विषय में नहीं है। श्रीरघुनाथजी अपने सौशील्यगुण से चाहे भलेही उन के वश्य होजावें, परन्तु परम्परा यही है कि भूतशुद्धि तथा भलीभांति सुगन्धादि लेपन करने पर ये बाहर भीतर सेवा के अधिकारी होते हैं; क्यों कि सुखसागर श्रीमहाराजकुमारजी परमसुगन्धित हैं। दुर्गन्ध से तो सामान्य देवता भी भागते हैं, श्रीमहाराजनन्दनजीको कौन कहे। देवतागण तेजोमय सुगन्धसम्पन्न होते हैं, उन से करोड़ोंगुना अधिक, सर्वदोषरहित और परमसुगन्धयुक्त नित्यसरकार के परिकरनिकर हैं, वेही सब सेवाओं के अधिकारी हैं अथवा जो उनकी परम्परा धारण किये हुए हैं वे भी श्रीअवधबिहारी-जीकी सेवा के अधिकारी हैं, औरोंकी गिनती नहीं है।

श्रीरघुनन्दनजी तो स्वयं सुगन्धसम्पन्न हैं और अपने मनोहर अंगों के सुगन्धों से सब पुष्पों को सुगन्धित करते हैं, सुगन्धित मालाआदि जो पहिरे हुए हैं वह केवल स्नेहियोंकी

रुचि तथा शोभा के लिये, कुछ सुगन्ध की अपेक्षा से नहीं। असङ्ख्य प्रकार के फूलोंकी सुरभिता क्षणक्षण में नवल अङ्गों में छाती रहती है, मन वचन से अगोचर होने के कारण कौन उसका वर्णन करसकता है ? श्रुतियां पुरुषोत्तमोत्तम को सर्वरस और सुगन्धमय कहाकरती हैं, यह बात सरकार में स्पष्टरूप से संघटित होती है। रसिक लोग भ्रमर के समान उस रूप के रसका दिनरात आस्वादन किया करते हैं, ऐसे श्रीमहाराजकिशोरजी हैं। कुछ विशेष अधिकता है, तभी तो ये श्रीप्राणवल्लभजी के वशीभूत हो उन के अङ्गों पर लुब्ध रहा करते हैं।

इस सुगन्धगुण के अनुसन्धान का यही परमसार स्वादु अनुसन्धान करनेवालों को मिलता है कि सभी प्राकृत पदार्थों में अतिदुर्गन्ध मालूम होने लगता है और सरकार के सुगन्धित अङ्गों को देखने की चाह और उत्साह अनुक्षण बढ़ता रहता है।

दोहा।

सहज सुगन्ध अनूपम, अंगन अमल महेस।
जुगलानन्य समस्त जग, ठग दुर्गन्ध असेस ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषा-वार्तिक-प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सौगन्ध्यगुणप्रदर्शनो नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः। ३१।

अब कोमल-मनहरणवेश रसेश श्रीकोशलेश जी की सुकुमारता का वर्णन किया जाता है । श्रीरघुनन्दनजी की सुकुमारता अनूठी है, जिस का वर्णन करने को शिवादि भी समर्थ नहीं, तो हमसरीखे कठोरमतिवालों से कहांतक निरूपण हो सकता है, पर कहे विना सन्तोष नहीं होता, अतः मति के अनुसार वर्णन करता हूं । श्रीप्राणप्यारेजी की सुकुमारता ऐसी है कि जैसे फूलों का फूलना, फिर ऐसी है कि जिस के सामने किसी ऋतु के कुसुम भी कठोर हो जाते हैं तथा उस के आगे सभी प्रकारकी मृदुलता न्योछावर होती है ।

श्रीलक्ष्मणादि तथा आलीगण निजनिज-समयानुसार जब पदपङ्कज स्पर्श करती हैं तब अतीव सङ्कोच को प्राप्त होती हैं कि कहां मेरी कठोरता और कहां इन अङ्गोंकी कोमलता । युगलसरकारकी रसमयी मूर्ति शुद्ध सच्चिदानन्दघन रूप है, प्रकृतिरूपी अविद्या का सम्बन्ध तो उस में रञ्चक भी नहीं है । केवल आप के स्वतन्त्र सङ्कल्प से राक्षसादिकी हानि होती आयी, युद्धादि तो लीलामात्र है । आपमें वीररस बहुधा पायाजाता है, जिस से युद्धादि उचित ही है, किन्तु उस से कठोरता नहीं सिद्ध होती । आप का अन्तःकरण भी अतिकोमल है, तभी तो सभीपर आपको दयालुता बनी रहती है ।

श्रीकोशलेश-कुमारजी के सुकुमारगुण के अनुसन्धान करनेवाले को अनन्तफलों का लाभ होता है । 'जैसे सब जीव

कर्कश कठोर हैं वैसा कठोर मेरा परमइष्टतम तो नहीं है ?, यह शङ्का इस सुकुमारतागुण के अनुसन्धान से दूर हुई, जैसे सुराज्य होने से चौरादिभय नष्ट होजाते हैं और मन वचन में कोमल द्रवीभाव उत्पन्न होता है, यही परम लाभ विशेष है।

दोहा।

कोमल कल कमनीय कर, पदवर वचन समस्त।
जुगलानन्य विचारि हिय, करु भवभीति निरस्त॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा-वार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सुकुमारगुण-वर्णनो नाम द्वात्रिंशत्तमो ऽध्यायः। ३२।

अब श्रीकौशल्यानन्दवर्द्धनजी के सहज सुहावन मनभावन सुवेषगुण का यथामति निरूपण कियाजाता है। श्रीजानकीवल्लभजी के अनूप स्वरूपकी रचना को अनूठी भांति से कहने के लिये शारदा-शेष-आदिकी मति भी भांवरीसी भरती रहती है, औरोंको क्या शक्ति है कि कहसके, तथापि श्रीकोशलेशसुनुजी की सुवेषता सबोंको मनोहारिणी होने के कारण विना कुछ कहे नहीं रहाजाता। अतर आदि सुगंधों से तर कोमलतर मेचक सघन सुकुमार शतमारजित् ललित घूंघुरवारी सबभांति से संवारी रसिकनयनप्यारी प्रेमियों के प्राणरूप सचिक्कन जो झलकवारी अलकें श्रीबदनारविन्द-

पर अनूठीरीति से शोभित हैं, उनकी सुखमा को निहार-कर रतिरमाआदि के मन-नयन हरजाते हैं औरोंकी क्या कहीजाय। श्रीपूषणवंशावतंसजी ने नख से शिखापर्यन्त जो मधुर मनोहर अदूषण भूषण धारण किये हैं वे मानों सौन्दर्य-सागररूपी अङ्गों के तरंगसरीखे भासते हैं और यह जान-पड़ता है कि अतिअनुरागियों के अनुरागी चित्तही यथाधि-कार स्वरुचिअनुसार शोभित हैं।

हेश्रीरघुनन्दनजी, आप के मञ्जु पदकञ्जमें स्थित अनेक रत्न-जटित नूपुरादि भूषण विविध भावों को उत्पन्न करते हैं और सुन्दर मधुरनाद से वीणा-हंस-कोकिलादि सबों को लज्जित करते हैं और अत्यन्त रंगीले रसीले परिकरनिकर (पार्षद परि-चरगण) के अनूप जीवनरूप हैं। प्यारेरंग का अनुपम पीता-म्बर सब रसों की खान सा है, जिसकी प्रतिमा के प्रतिविम्ब से अनेक दामिनी चम्पक और तप्तहाटककी द्युति भी तुच्छातितुच्छ होजाती है। स्वच्छता तो स्फटिकमणियों को लजानेवाली है जो श्रीश्यामघन में अत्यन्त शोभित होती है। मधुरउर में असंख्य प्रकार के पुष्पों से रचित और मणियों से खचित ललित वैजयन्ती माला और पुष्पमालाएं सुशोभित हैं, जिन में सुरभिता (सुग-न्ध) अत्यन्त पाईजाती है और रसिकजन-मन-मधुप अन्य सब रसों को छोड़ इन्हीं का रसास्वादन करते हैं। उरनिकेत में उपेत मधुरशब्दसमेत परमदीप्त छविसार मुक्ताहारकी सुन्द-

रता देख शिशुमारचक्र भी अधोमुख हो अकाश में चलागया है। श्रीकोशलेशनन्दनजी के नित्यद्युतिभरण मनहरण नासामणि को देख शशि रवि सभी विकल हो जाते हैं। श्रीछविनिधिजी अपनी बर्छी सी तिर्छी चितचोर दृगकोरकी चितवन से सबके मन और नयनों को जीतलेते हैं। जनसुखखान आपकी मन्द मन्द मुसकान से सहजही में सब लोग अनायास वशीभूत होजाते हैं। कटिमध्यराजी क्षुद्रघंटिका ने अपनी सुवेषता से शेषनाग को लज्जित किया है। कामधाम के मोहन कल-रमणीय कमनीय लोल कुण्डलयुगल अपनी लोलता से श्रीशं-करादिकी समाधि को भी चञ्चल करते हैं। सुभग भुजाओं में विविधरचनायुक्त बाजूबन्द बिजायठ तबीजआदि अत्यन्त शोभित हैं। नवीन कुसुमपांखुरीसम मधुर मृदुतर अंगु-रियों में मणिजटित ललित मुद्रिकाएं अपनी चन्द्रिका से उपा-सकों के मन का तम नाशकरदेती हैं। दांतोंकी पांती और बिम्बसदृश अधर अनुपम वदनकञ्ज में मिलकर शोभित होते हैं। किरीट ताज और सुरंग पाग आदि शिरोभूषण अनेक-भांति के हैं। अंगा भी अंगों पर ऋतुअनुसार अनेक भांति से सोभते हैं। इस प्रकार से रंगरंग के अनमोल वस्त्र भूषण आप धारण किये हुए हैं। जिस सुवेषगुण को श्रीभरतजी ने श्रीअवधकांड में जहां तहां विशेषरूप से वर्णन किया है। और श्रीवाल्मीकीय में जहां रूप कला विद्याविषयकी उपमा

गन्धर्वराजकी दीहुई है वह केवल सुमेरुकी सूचना के लिये लिये तिलमात्र सुवर्ण दिखाने के समान है। इन के समान यही हैं, यह अनुपम हैं, किसकी उपमा दीजावे। प्राणप्यारे जानकीजीवनजी इसप्रकार सन्तत विहारासक्त रहा करते हैं।

इस सुवेषगुण के अनुसन्धान से रूपमाधुरी के विलोकन में अतिअभिलाषरूपी लाखोंप्रकार के लाभ हुए।

दोहा।

सुभग सुवेष असेष गुन, गर्भित गरु गम्भीर।
जुगलानन्य सनेह सह, करु विचार धरि धीर॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दी-भाषावार्तिक-प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सुवेषगुणवर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः। ३३।

अब छविसागर नवनागरजी के लावण्य गुण का वर्णन कियाजाता है। श्रीरसिकेश्वरजी का लावण्य इस प्रकार का है। जैसे मनोहर मोती के भीतर अत्यन्त तरलत्व देखपड़े वैसेही आप के नवीन अङ्गों में जो छटा अनुक्षण झिलमिलाती रहती है वही श्रीकिशोरीप्राणवल्लभजीका लावण्य है। यह भी नवरंग उतंग लावण्य का लक्षण है सब अङ्गों के प्रतिबिम्ब सबअङ्गों पर पड़ते हैं। दर्पण से भी कहीं स्वच्छतर वे अङ्ग अनंग को जीतनेहारे हैं। जैसे सभी व्यञ्जन लवण से ही

स्वादिष्ट जानपड़ते हैं वैसे ही अङ्गों की रुचिरता सुन्दरता लावण्य (लोनाई) रहने से ही खुलती अर्थात् वे लोने (सलोने) जानपड़ते हैं। सभी परिकर प्रत्यङ्ग में एकटकी लगाये रहते हैं, परन्तु क्षणक्षण में छवि दूसरीही भांतिकी देखपड़ती है। यद्यपि देखे असंख्य कल्प बीतजाते हैं किन्तु सब परिकरों को यह जानपड़ता है कि अभी देखा है। ऐसी लुनाई अन्यत्र रञ्चक भी नहीं पायीजाती, क्यों कि श्रीयुगल सरकार के अङ्ग अतिअद्भुत हैं, इस के आगे औरोंकी क्या गिनती। ये सरकार अपनी माधुर्यमयी मूर्ति को निहारकर आपहो विस्मित होते हैं क्यों कि यह लुनाई और मधुराई की सीमा है।

इस गुण के अनुसन्धान से चित्तकी निर्मलता तथा अङ्गों में रुचिशुचिता-रूपी परम फल प्राप्त हुआ।

दोहा।

ललित लुनाई लाल अंग, छाई छवि छन संग।
जुगलानन्य प्रसन्न है, रमु एहिमधि सोमंग ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे लावण्यगुणप्रदर्शनो नाम चतुस्त्रिंशो ऽध्यायः । ३४ ।

अब श्रीप्राणबल्लभ महाराजराजेश्वरजी के संहननगुण का निरूपण कियाजाता है। संहनन नाम शरीर का है। जिन

के शरीरमे अत्यन्त अनुपम बल और विलक्षण प्रौढ़ता है, ऐसे श्रीरघुवीरजी से बड़े बड़े मल्ल (पहलवान वा योद्धा) भी हारजाते हैं। विशेष गुण यह कि आप आर्तोंका त्राण कर उसकी रक्षा करनेहारे हैं, क्यों कि सरकार मे अत्यन्त बलिष्ठता है। सरकार के समस्त अङ्ग अतिसचिक्कण वर्णत्रिकारादि-रहित और सुखमासहित हैं। श्रीराघवेन्द्रकुमारजी के अमल अंगोंपर मशक भी नहीं ठहर सकता, ऐसे वे सर्वदा स्निग्ध हैं। ऐसे उनके अङ्गों को देख देख सभी परिकर उन पर तन मन धन न्योछावर करते हैं। हे श्रीजानकीबल्लभजी आप के गुणों को श्रीमद्वाल्मीकि आदि महाकवियों ने भली भांति वर्णन किया है, पर वे भी नेति नेति कहते हैं; हम सब क्या वर्णन करसकेंगे?

इसगुण के अनुसन्धान से, स्वामी के बल के बल से अति निःशङ्कतारूपी परमलाभ प्राप्त होता है।

दोहा।

सुठि संहनन सोहाव सर, जल अगाध अति जानु।
नेही मीन हमेस ही, मगन न बिलग पिछानु॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे संहननगुणप्रदर्शनो नाम पञ्चत्रिंशो ऽध्यायः।३५।

अब रंगरसबोर चितचोर श्रीराजकिशोर जी का अभिनव यौवन-गुण निरूपण किया जाता है। हे श्रीजानकीरसरसिकजी, आपकी किशोरता के वर्णन के समय श्रीशारदाजी के वदन से भी लाल चूता है अर्थात् वह भी बहुत लाज को प्राप्त होती हैं, हमारे सदृश अन्य सामान्य जीव क्या कहसकें, तो भी अपने सुखास्वादन के लिये कुछ कहाजाता है। सच्चिदानन्द-मयविग्रह श्यामसुन्दर श्रीमहाराजकिशोरजी सदा षोड़श-वर्षकी अवस्था में और सर्वत्रएकरस रहते हैं। यह रहस्य अतिरसज्ञों के हृदय में झलकता है, और कौन जान सकता है। यही मूर्ति वात्सल्यरसवालों को बाल्यादि अवस्थाओं के रूप में जानपड़ता है। यह भावमयी मूर्ति है, पर स्वभावतः किशोर ही बनोरहती है, यह श्रीवाल्मीकिजी ने भी अनेक ठौर कहा है। इस मूर्ति में अवस्थानुरूप ज्ञान वैभव प्रताप मोद सबकी सदा वृद्धि हुआकरती है, परन्तु विग्रह (मूर्ति) सदा एकरस किशोररूप ही रहता है। यह विग्रह देहि-देह-विभागरहित शुद्ध चिन्मय नख से शिखापर्यन्त नित्य अखण्ड दण्डायमान और सुखरसखान है। जो अधमाधम कुतर्क-वादी परधामप्रयाण-प्रक्रिया में अनुचित मति फैलाते हैं वे अति अज्ञ नीच हैं, वे इसे क्या जानें। इस अतिदुर्गम रहस्य की कीर्ति श्री प्रताप सब एकरस हैं, इस पर श्रुति-स्मृति में अमित प्रमाण प्रसिद्ध हैं। ऐसे ही श्रीरघुनन्दन-मुखचन्द्र-चकोरी

श्रीराजकिशोरीजीकी अवस्था आदि जानना चाहिये। इसी प्रकार और भाइयों तथा परिकरगण की भी अवस्थादि जाननी चाहिये, कुछ भेद नहीं, सभी अप्राकृत (अलौकिक) हैं।

इसगुण के अनुसन्धान और विचार से श्रीरघुनन्दनजीके स्वरूप और परस्वरूपकी नित्यता किशोरता एकरसता और विलक्षणता का ज्ञानरूपी लाभ हुआ।

दोहा।

अभिनव जीवन नवल नित, षोड़स वर्ष किसोर।
सखी-सखादिक प्रानधन, युग अनन्य चित चोर॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे अभिनव यौवन गुण प्रदर्शनो नाम षट् त्रिंशोऽध्यायः। ३६।

अब छबिजोर श्रीकोशलराज-किशोर जी का भाग्यवत्व निरूपण किया जाता है। सकल श्रुतिसार सिद्धान्त भ्रान्त-तम-शान्त-करणहित श्रद्दागअनुरागसहित परमपरत्व माधुर्यगुणसूचक कमनीयतर भाग्यवत्ता-गुण के अनन्त लक्षण हैं। यहां संक्षेप में केवल वस्तुमात्र बोध के लिये कुछ लिखे जाते हैं। जिन पुरुषसिंह को देखते ही विना विचारे ही यह दृढ़ मति होजाय कि यह बड़े भाग्य युक्त और सबोंसे पर पदार्थ हैं, इनके समान अपर ईश परेश कोई नहीं। ऐसा

भाग्यवत्त्व केवल कृपाल श्री नृपाल-बाल जीमें पायाजाता है। जब श्रीरघुनन्दनजी बनमार्ग में थे, उस समय सब नीच ऊंच अनुमान करते थे कि यह हरि हैं वा हर हैं और बहुत तर्कके पीछे निश्चय करते कि इनके समान अनुपम कोई नहीं है अतः श्रीरघुनन्दनजी स्वाभाविक भाग्यवान् लक्षित हुए हैं। औरों में तो भाग्य का आभास रहता है, पर श्रीचक्रवर्तिचूड़ामणि प्यारेजीके समान किसका भाग्य है यह बात तो स्पष्ट हो ज्ञात हो जाती है। श्रीमहाराजकुमार जो परत्व में भी सर्वेश्वरों के नियन्ता और माधुर्यमें भी महाराज-कुमार और स्वयं महाराजाधिराज हैं, क्योंकि पिता-पुत्रमें अधिक समता होती है (पिता वै जायते पुत्रः)। श्रीमहारानी कौशल्याजीने भाग्यवानोंमें परमभाग्यवान ऐसा पुत्र उत्पन्न किया कि जिनकी भाग्यलक्ष्मीसे करोड़ों और असंख्य अभागे जीव भाग्यसम्पन्न हुए, होते हैं और होंगे।

यदि पुत्र होय तो भाग्यमान होय, पण्डित शूर नभी होय तो हानि नहीं, क्योंकि सब बातें भाग्यवान् के अनुकूल हो जाया करती हैं। श्रीकुन्तीजीने श्रीद्रौपदीजीसे कहा था कि मेरे सभी लड़के विद्वान और शूर हैं, किन्तु भाग्यहीन होने से बनमें दुःखदावानलसे तप रहे हैं।

भाग्य तीन प्रकार का होता है। एक लौकिक, दूसरा अलौकिक और तीसरा परमार्थमय। लौकिक और अलौकिक

के अनेक भेद हैं, जो देश काल कर्म स्वभाव के अनुसार होते हैं। वे अब यहां संक्षेप से कहे जाते हैं। लौकिकी भाग्यवत्ता तो स्वल्पपुण्य से उत्पन्न मनुष्यादिकों को होती है, वह अनेक दुःखों से भरीहुई और अल्पकाल रहनेवाली होती है। अलौकिकी भाग्यवत्ता पुण्यचय से प्राप्त होती है वह देवादिकों में पायीजाती है, परन्तु वह भी चार दिनों की चांदनी सी हो जाती है। अतः ये दोनों प्रकार के भाग्य विवेकियों के हेय हैं। तीसरी भाग्यवत्ता नित्यमुक्त सरकारी परिकर और स्वयं सरकार में पायी जाती है। वह भाग्यवत्ता नित्या स्थिरा निर्मला प्रकाशमयी चिन्मयी और मोद-विनोदमयी है। श्रीरघुनन्दन जी के स्नेहियों को भी वही विलक्षण भाग्य तीन प्रकार से सुलभता के साथ प्राप्त होता है, अर्थात् नवधा दशधा वा परा भक्ति, उपायशून्यशरणागति और श्रीजानकीबल्लभ जी की प्रसन्नता इन्हीं तीनों कारणों से वह पीन भाग्य मिलता है, इस में सन्देह नहीं। इस भाग्य की फिर कुछ अवधि नहीं रहती। सरकार परम अनवधि हैं और औरों के अवधि हैं।

व्याकरणशास्त्र में कहा हुआ भज धातु सेवार्थक है, उसी से भक्ति-पद बनता है और भग शब्द भी प्रत्ययभेद से उसी धातु से सिद्ध होता है वास्तव अर्थ दोनोंका एक ही है। इसी प्रकार से भक्ति और भग शब्द के साथ भी भिन्न भिन्न प्रत्यय-सम्बन्ध से अनेक शब्द और अनेक अर्थ हो जाते हैं। यहां यह तात्पर्य

अतर फुलेल आदि सुगन्ध, अनन्त वनिता, अमित वसन, अमित भूषण, गानतानसम्पति, भोजन, ताम्बूल और सब प्रकार के सुन्दर वाहन, ये आठ भोग्य पदार्थ होते हैं।* इनको भी भाग्य कहते हैं, किंतु यदि ये सदा एक रस और अनामय हों, क्योंकि दो दिनों का भोग्य भोग तो सोग वा रोग सा दुःखजनक होता है। ऐसे भाग्य से परमसम्पन्न तो श्री रघुबीर जी ही हैं, क्योंकि सभी भोग्य इनके सन्तत और ताजे पाये जाते हैं। कोश में भगनाम भाग्य का है, वही दैव कहलाता है जो अदृश्य है परन्तु विवेकीजन अनुमान से अनुमान कर लेते हैं। श्री आदि कवि ने श्री रघुनाथ जी का भाग्य श्री भरत जी के सुखसदन वदन द्वारा सर्वोत्तम कहा है। आठो भोग्यों के प्रमाणों को अनुमान से निश्चित करना चाहिये।

श्री महाराजकुमार जी निरन्तर दुग्धफेनसम स्वच्छ मनहरण आस्तरण और अनेक गिलम गलीचे पर शयनकुञ्ज में शयन करते हैं। जहां ठौर ठौर विचित्र रचनायुक्त वेलि बूंटों से रंगदार छबिकार चित्रकारीयुक्त और भाव रसादि प्रतिकूलतारहित सकल ऋतु अनुकूल जगमग असंख्य मणिगण-

---

* सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूलभोजनम् भूषणं वाहनं चैव भोग्याष्टक मितीरितम् ॥

मण्डित अतर आदि सुगन्धों से सिक्त चहलपहलमय अनेकों महल हैं। वहां मनोजमोहन मधुर सुहावन शुक सारी मयूरादि शब्द, गान तान तथा नायिकागणभूषण-निनाद होते रहते हैं। वहां सरकार अनेक रागिणी और वीणादि यन्त्रों के मधुर मुखर शब्दों से जागते हैं। उसी प्रकार सोते समय बहार के साथ सोते हैं। उस समय करोड़ों नायिकाएं करारविन्दों से पदकञ्ज सेवती हैं। यह आनन्द-सन्दोह, सर्वदा भरपूर रहा करता है। उस समय सूत मागध, वन्दी सभी अनेक काव्यों से प्रशंसा और वंशवर्णन निरन्तर कियाकरते हैं, ऐसे भाग्यवान् हमारे स्वामी भ्राता-स्नेही सखा और प्राणधन हैं। यह बात श्री अवधकाण्ड में श्री भरतजी ने कही है, इसी से सब भोग्यसमुदायकी-सूचना हो गई। श्री महाराज (दशरथराज जी) ने भी कहा कि मेरे-जीवनधन श्री रघुनन्दनजी सन्त विचित्र भूषणादि-भूषित हरीचन्दन, कुंकुम, कस्तूरी से लेपितांग और अमित सुकुमारी नारियोंसे सेवित हैं।

उक्त श्री महाराज जी की उक्ति से श्री रघुकुलेशसूनु जीका दक्षिणनायकत्व * सूचित होता है, क्योंकि श्रीवाल्मीकि जी ने भी कहा है कि सहस्त्रों नायिकाएं तथा अपर

---

* तासु त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिणः कथितः ।

सभी परिकर प्रसन्न रहते हैं किसी को किसी प्रकार का खेद नहीं, जिससे श्री रघुनायक जी दक्षिणनायक सिद्ध होते हैं। ऐसा सन्देह स्वप्नमें भी नहीं करना चाहिये कि श्री रघुनन्दन जी ने तो एक श्री जानकी जी से ही सम्बध किया है, उनकी बहुत स्त्रियां कैसे हो सकती हैं। ऐसे ही सन्देहकर्ता लोग ग्रन्थों के विचारे बिना शोकमें पड़ कर बहराया करते हैं। श्री बाल्मीकीय में तो बहुत ठौर सरकार का अनन्तनारी-सम्बन्ध लिखा हुआ है। मन्थरा ने श्री कैकेयी जी से कहा था कि यदि राज्याभिषेक होगा तो श्री रघुनन्दन की सभी स्वकीया नायिकाएं हर्षेंगी और भरत जी की सब पत्नियां खेद पावेंगी। इस उक्ति से और भी एक नयी बात मालूम हुई कि श्री रघुनन्दन जी की कौन कहे श्री भरत जी की भी अनेक पत्नियां हैं।

ऐसे ही श्री लक्ष्मण और शत्रुघ्न जी की अनेक पत्नियां हैं। सर्वशक्ति वन्दित पंकज पदपराग श्री जानकी जीने श्री रघुनन्दन जी से रोषामर्ष और घमंड के साथ कहा था कि मुझे छोड़ कर आप बेखटक अमित स्त्रियों के साथ विहार करेंगे। इस वचन से उन्हों ने धैर्ययुक्त गम्भीरता धारण किया। सागर ने भी प्रार्थना के समय श्री रघुवरभुजा के अनेक विशेषण देते हुए कहा कि जो बाहु अनेक सुन्दर भूषण वसन शृङ्गारादि-सम्पन्न नारीगणों के करकंजों से सेवित था।

इससे जो लोग अपनी अज्ञता से श्रीरघुनन्दन जी में परस्त्रीसङ्ग का अनुसन्धान करने लगते हैं, वह अत्यन्त अनुचित है। क्योंकि रघुकुलकुमुदचन्दन श्रीरघुनन्दन जी तो परस्त्री के करस्पर्श को कुलिशसे भी अधिक कठोर मानते हैं। लोकमें भी जो धर्मज्ञ हैं वे परनारी का सर्वथा त्याग करते हैं; श्रीरघुनाथ जी तो परमप्रशस्य धार्मिकवंशमें प्रकट हैं, आप धर्म के कारण हैं सबप्रकार से धर्म मर्यादामय हैं, तो आप का पामर वा परायी स्त्रियों से स्पर्श नहीं कहा जा सकता, ऐसे कुतर्कों का सम्पर्क भी ठीक नहीं। एकपत्नीव्रत का यह अर्थ है कि एक अर्थात् मुख्य पत्नी का व्रत जिसने धारण किया है। पत्नी ब्याही स्त्री को कहते हैं, जिससे स्वकीया का ग्रहण और परकीया का त्याग सर्वथा श्रुति स्मृति संहिताओं से सम्मत है। श्री रघुन्दन जी का परमपरत्व तो माधुर्य ही में पाया जाता है। उदाहरण में देखिये कि केवल पादुका उन्होंने भरत जी को दी थी और कहा कि यही पादुका लोक-मात्र का योगक्षेम करेगी। जब उनकी पादुका में इतनी शक्ति है तब श्री कोशलेन्द्रकुमार का क्या कहा जाय ?

जो अधमाधम महामन्दतर श्री राजीवनयन जी से भिन्न अपर परेश कल्पना करते हैं वे महा असुर हैं और जो ऐसे महाभाग्यवान में भोग्य पदार्थों की अल्पता कथन करते

हैं वे भी वैसे ही हैं, जिन के भोगस्थान श्रीवाल्मीकीय में अपूर्व वर्णन किये गये हैं। सुमन्त्र जी ने श्री रघुनन्दन जी के ऐसे कनक भवन देखे कि जिनकी अटारी कैलास से भी उच्च विशेष विचित्र, जिनकी छटाके सामने इन्द्रजी की अमरावती तथा विष्णु आदि के स्थान फीके जान पड़ते हैं। जिनमें सुन्दर मनोहर रहित पीतादि अनेक मणियों के किवाड़ लगे हैं, अनेक प्रकारकी छावनी, अनेक प्रकार के झरोखे वैसीहो खिड़कियां और भी सभी मणिगण अनुपम जड़ाव से जड़े जगमगा रहे हैं। जहां मूंगे मोतियों के विविध वितान तन रहे हैं, जो चन्दन अगर कस्तूरी अतर आदिसे सुगन्धित हैं, जहां सारस मयूर शुक पिक आदि पक्षी मनोहर नाद कर रहे हैं, जो कृत्रिम अनेक मृगादि जीवों से आकीर्ण हैं, जो मन नयन दोनों को सहज ही में हर लेते हैं, जो नारीरत्नों से पूर्ण हैं, जहां नाच गान बाद्य हो रहा है, जहां तहां श्री रामसहस्रनाम लिखे हुए हैं, जो शंकरजी ने रुद्रजामल तन्त्र में कहा है। इस वर्ण से भी परम भोग्यता और भगवत्तागुणमय भोग सूचित हुआ।

श्री महाराजनन्दन जी की समस्तकलाशीलादि में गुरुता और परमभोगसम्पन्नता है। जिनके किंकरवर्ग भी महामति-सम्पन्न हैं उनकी क्या कही जाय। श्री रामनन्दन जी की धन-

सम्पत्ति कुवेर से भी असंख्य गुणी अधिक है, भोगविलास करोड़ों इन्द्रों से भी अधिक अखण्ड और एकरस है, पालकत्व अनन्तविष्णुसम है, अमित मत्त मातंग ऐरावत कुल को तुच्छ करनेहारे उमंग से भरेहुए हैं, रथ गरुड़ की गति को भी तुच्छ करनेवाले हैं, अमित मल्लयुद्धोत्साहसहित और ईश्वर से भी अधिक बल प्रताप तेज समेत हैं, अनन्त उतंग उत्तुंग तुरंग अपनीगति से उच्चैःश्रवा की भी निन्दा करते हैं, दासियां देवकन्याओं से भी सौ करोड़ गुण अधिकरूपगुणवती हैं, सारथी मातलि से भी विशेष चतुरतर हैं, ऐसे अनेकश्रीसम्पन्न चितचोर श्री राजकिशोर जी सबके मन मति बुद्धि को रमाने वाले हैं। श्री मद्वाल्मीकीय रामायण में श्री अशोकवाटिकावर्णन में भी सब भोग लिखे हुए हैं। रूपगुणविभूति से भरी अमित अप्सरा किन्नरी विद्याधरादि कन्याएं और भी अनेक वनितागण रसपान में मत्त हो श्री जानकीजीवन जी के आगे अनुरागभरी नृत्य करती हैं, सबों को प्राणवल्लभ श्रीमहाराज जी भलीभांति से रमाते हैं। श्री ब्रह्मरहस्य के रामसहस्रनाम में भी लिखा है कि श्री रघुनन्दन जी महारासोत्साह के आनन्द से पूर्ण हैं, अनन्त अनङ्गछविधारी हैं, सुभग ताण्डवादिनृत्य में चतुरशिरोमणि हैं सुन्दर मालादिभूषण सम्पन्न हैं, बीन के बजानेमें परमप्रवीण और नवीन हैं, स्नेहियों के स्नेहनिर्वाहक गुणग्राहक हैं। भगशब्द के

भक्ति भाग्य ऐश्वर्य सौभाग्यादि अनेक अर्थ हैं। वे सभी गुण मङ्गलमयगुणगणसम्पन्न भुवनभूषण श्री राजेश्वरसुनु जीमें हैं और किसी में नहीं।

छ गुण जिनमें पूर्ण हों वह भागवान् कहाता है। वे न हों तो भी अंशकलाविभूतियुक्त पुरोषोत्तम भगवान ही कहलाते हैं। ऐश्वर्य धर्म यश श्री वैराग्य मोक्ष ये छः गुण सम्पूर्ण केवल श्री जानकीजीवन के आश्रित हैं। और भी पोषण, भरण, आधारत्व, शरण्यत्व, सर्वकारणत्व, और कारुण्यत्व ये छः गुण श्री रामभद्राजी में पाये जाते हैं-और भी छ गुण हैं जो अङ्गाङ्गीभाव से प्राप्त होते हैं यथा—उत्पत्ति, प्रलय, भूतों की गति, अगति, विद्या और अविद्या का ज्ञान, ये अङ्गभूत गुण हैं। श्रुतियों ने भी कहा है कि जो राजाधिराज हैं, वे ही सर्वेश्वर हैं। यह बात केवल श्री राजकिशोर जी में ही श्री बाल्मीकीय तथा अन्यसंहितादिकों के सिद्धान्त से जान पड़ता है। अतः सर्वेश्वरत्व इन्हीं में है और सब अंश कला और विभूति हैं। भग शब्द का अर्थ सब प्रकार से केवल सरकार सुखसार श्री महाराजकुमार ही में पाया जाता है।

सब प्रमाणों से यही स्पष्ट होता है कि श्री जानकीबल्लभ जी सौभाग्य, यश, दिव्यगुण, महत्व, विभूति, स्तोतव्य, कमनीयता, शोभा, दाम्पत्य, गृहस्थत्व, द्रष्टव्य, समस्त सिद्धि,

मङ्गल, शील, विद्याविनोद, प्रमोद, रसादि असंख्य पदार्थों के सीमा हैं। ऐसा और कोई नहीं है। इन को साक्षात सर्वेश्वरी श्री जानकी जी ने परममधुर मनहरण कान्त विचारकर वरण किया है। यही सर्वोपरि हैं। श्री राघव जी के भाग्यवत्ता-गुण को श्री ब्रह्मा विष्णु आदि भी नहीं कह सकते हैं तो हमारे समान पामरों से क्या कहा जायगा ?

इस गुण के अनुसन्धान से अनेक प्रकार के लाभ हैं। परन्तु विशेष लाभ यह कि श्रुतियां जिनको निर्गुण, निराकार निर्विशेष, निरञ्जन, निरीह, निश्चय, निरालम्बन, निर्वाण, शान्त, मानातीत, अनाश्रय, शुद्ध, बुद्ध, प्रकाशमात्र, इच्छारहित, उदासीन, अभोक्ता, अखण्ड, चिदानन्द, शोभारहित, स्वाद-सुखमारहित, स्थानरहित, निर्विकार व्यापक, परब्रह्म, परतेज, और परात्पर कहती हैं, वह कुछ और ही हैं। क्योंकि श्रुति के उक्त समस्त पद प्राकृतिक सम्बन्ध को निराकरण करने वाले हैं और निराकारादि पद आकारहीन के वाचक हैं, ऐसा स्वप्न में भी नहीं समझना चाहिये; क्योंकि ऐसा विचारना अज्ञों का कुतर्क है। प्रेम के विरोधी ज्ञान वैराग्य योग आदि सभी हेय हैं। कुतर्कवादी पाखण्डियों का और विजातियों का सङ्ग कदापि कर्तव्य नहीं है, क्योंकि उनके सङ्ग का रंग प्रियतम के मिलन की उमंग को न्यून कर देता है। इनके

भजन से सब फलों का लाभ होता है और चित्तसे मत मतान्तरों का तिरस्कार होता है। सर्वोपरि बड़ा लाभ यह है कि सरकार के माधुर्य में मनका लगना और पग जाना। जिन अधमाधम नोचों को श्री महाराजसूनु के गुणगणों में स्नेह न हुआ वे बड़े अभागियों के शिरोमणि हैं।

दोहाः—

भव्य भावना भक्तिजुत भाग्यवत्त्व गुनसार।
जुगलानन्य हिये सदा प्रीतम सगुन अधार॥

इति श्री युगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषावार्तिक प्रबन्धे सारसिद्धान्ते श्रीरघुवरगुणदर्पणे भाग्यवत्त्वगुणनिरूपणो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।३७॥

अब श्री सनेहसागर और परम प्यारे परिकरों के परस्पर विलक्षण अनुराग का निरूपण किया जाता है। श्री रघुनन्दन तथा उनके सम्बन्धियों के जो रंगमय उत्तरोत्तर स्नेहाधिक्य, वही परम अनुराग है। ऐसे अनुराग के वीज पहले दो प्रकार से उत्पन्न होते हैं, एक तो गुणगणों के श्रवण से, दूसरे अवलोकन ही से। श्री रघुनन्दन तथा स्नेहियों के रूप गुण रस यश सुख सभी परस्पर मन में दृढ़ता होजावे यही राग है। यही राग जो अत्यन्त श्रवण-मनन

से बढ़ा हुआ हो उसे अनुराग कहते हैं, वह परस्पर वज्रसारसम दृढ़ अचल और एकरस होता है। वियोग होने से ऐसा अनुराग नित्यस्वरूप में भी दुःसह दुःख उत्पन्न करता है। श्री रघुनन्दनजी ने केवल नित्यता से देहधारण किया। ऐसा न होता तो श्री भरतादिकों का वियोग आप को अत्यन्त कठिन जान पड़ता। परम विहारी श्री रघुनन्दनजी समस्त लोकों के क्षेमकारी और स्नेह के अत्यन्तवश्य रहते हैं, इतना कि किंकर से भी न्यून होजाते हैं; यह श्रीभक्तमालादि ग्रन्थों में कथाओं द्वारा प्रसिद्ध है। श्रीरघुनन्दनजी के सच्चे स्नेही अपने नेत्रों में श्याम मणिमयो लाल की मूर्ति को चश्मे के समान लगाये रहते हैं, उन्हें श्याम के सिवा और रंग नहीं दीख पड़ता। उनके निकट राग द्वेषमय नानात्वदृष्टि का सहजही में अभाव हो जाता है।

इस प्रकार से जब चित्त अनुरागी होजाता है, तब अन्ध बधिर मूक और जड़ उन्मत्त सी दशा होजाती है। श्रीरघुनन्दनजी के राज्य में सभी श्रीरामाकार होगये। मारीच ने भी ऐसा ही कहा कि हमें पत्र खड़खड़ाने में भी केवल श्री महाराजकुमार ही दिखाई पड़ते हैं, दूसरा नहीं। श्रीकोशलेशकुमारजी के गुण सुनते सुनते और मनन करते करते

जिन के मन वचन कर्म तदाकार हो जाते हैं, मन से दूसरा रूप गुण नहीं आता, वाणी से दूसरी बात आपही आप उच्चरित नहीं होती और देह से दूसरी चेष्टा नहीं होती, ऐसे ही बड़भागी अनुरागियों के वश में श्रीप्राणवल्लभजी सदैव रहा करते हैं।

यही अनुराग प्रतिकूलों में भयसम्पन्न होता है और कहीं दूसरी तरह से भी होता है, जैसे काम से योगी, कोशलखंड के अनुसार प्रीति के भय से मारीच, द्वेष से रावणादि, सम्बन्ध से रघुवंशी, स्नेह भक्ति से सभी भक्त तदात्मभाव को प्राप्त हुए। श्री हनुमानजी ने यह बर मांगा कि हे वीर! हे राजन्! हे परमस्नेहपाल! हमें यही बर मिले कि स्नेह भक्ति भाव प्रीति अनुराग सब आप में दृढ़ होवे, अन्यत्र स्वप्न में भी कभी न जावे। क्या ही विलक्षणता अनुराग की है कि प्रत्यक्ष श्रीसरकार से भी यही मांगते हैं कि अनुराग और गुणों का श्रवण मिले। इस से सार सिद्धान्त यही सिद्ध हुआ, और तो नट का तमाशा सा है; इस के सामने मोक्ष भी तुच्छ जान पड़ता है और की कौन बात है।

उक्त अनुराग अधिकारियों के उत्तम मध्यम अधम के भेद से अनेक प्रकार का होता है। स्वच्छ जलमें जैसा रंग मिलता

है वैसा ही देख पड़ता है, जैसे स्वच्छ स्फटिक में नानारंग का प्रतिविम्ब; और भी जैसे एक ही जल अनेक वृक्षों में जाता है, पर नाना बीजों के अनुसार नाना फल उत्पन्न होते हैं। उत्तम स्नेहियों का तो मजीठ और कसीस के रंगसा अनुराग होता है क्योंकि मजीठ का रंग पक्का और सुन्दर लाल होताहै। किसी का अनुराग काष्ठजनित पतंग के समान स्वल्पकाल-स्थायी होता है। किसी का हरदी के रंग सा होता है; जो पहले सुन्दर, पीछे दोही दिनों में कुछ नहीं। ऐसा ही कुसुम रंगसा भी जानना चाहिये, यह मध्यम स्नेह है। किसी के अनुराग केसर वा हरताल के रंग से होते हैं, ये भी अच्छे हैं। किसी का गेरू के रंग सा, किसी का अंगार के रंगसा, किसी का पलाश के रंगसा, किसीका बन्धूक (दुपहरिया) के कुसुम सा, किसी का अड़हुल सा, किसीका गुलाब सा, किसी का हरिशृंगार सा, किसी का अनारकुसुम सा, किसी का कोक-नद सा, किसीका कुमुदसा, किसी का अतसीसुमन सा, किसी का विष्णुक्रान्ता सा, किसी का मयूरकण्ठ सा, किसी का श्याम घन सा, किसीका एरण्डकली सा, किसी का कपासरंग सा, किसी का सीसो सा, किसी का अरता सा, किसी का मूंगा सा, किसी का हीरा सा, किसी का मोती सा, किसी का तप्तहाटक सा, ऐसे ही अनेक रंग के अनुराग होते हैं, सब कहने में कोई समर्थ नहीं; पर थोड़ा वर्णन कर दिया गया।

आप श्री जानकीजीवनजी हरितमणि-आभा के हरण करनेहारे परममधुराकार सुखसार हैं। जिस रंग का जो अनुरागी रहता है उसको आप उसी के अनुसार देख पड़ते हैं, यह आप को अत्यन्त विचित्रता है। सभी अनुरागी आप के रंग में रंगे हैं, सभी प्रकार से सब के जीवन आप ही हैं। समस्त स्वाद-सौख्यदाता, सर्वसद्गुणनिधान, सबसे अधिक परमप्रेमी, सब प्रकार से सब का मन रंजित करते हैं। जो सब का मन रञ्जित करे वही राजा है, ऐसे लक्षणवाले आप ही हैं। आप अपने सत्यगुण से लोकमात्र को, दानसे दीनों को, सेवा से गुरुओं को, धनुष से वीरों और शत्रुओं को वश करते हैं। ऐसा कोई नहीं जिसको आप अपने रूप वा गुण से नहीं वश करें। श्री रघुनन्दनजी सब के मित्र हैं, यह प्रसिद्ध ही है।

श्री अवधकाण्ड में वसिष्ठजी ने श्री महारानी कैकेयीजी से कहा कि जहां कुलदीप रघुवर जायंगे वहां ही सब पशु पक्षी व्याल मृग पादप जायँगे। सुमन्त्रजीने भी श्री महाराज से कहा कि हे राजाधिराज! आप के देश में वृक्षलता भी मुर्झा गई हैं, सचेतन स्नेहियों की कहां तक कही जाय। विचारना चाहिये कि जब रघुराजकुलमण्डनजी के संयोग वियोग में जड़ भी हर्षशोक पाते हैं तो औरों का क्या कहना है? अतः

सब प्रकार परमपूजनीय यही सिद्ध हैं, श्रौर कोई नहीं। जब श्री चक्रवर्त्ती महाराज जी ने श्री रघुनन्दन जी को सर्वगुण-सम्पन्न देखा तब सचिवों से मिल कर सलाह की कि किसी प्रकारसे हो यह गुणखान प्राणजीवन राजगद्दी पर बैठें, तो हमारे रोम रोम में मोदविनोद छा जावे। उपास्य उपासकों का यह परस्पर अनुराग विचारने योग्य है।

इसी प्रकार श्रीराघवजी ने श्री महाराजसे कहा कि श्राप परात्पर धाममें जायं। तब श्रीमहाराज जी परम सनेहसानी मधुरवाणीसे बोले कि मुझे भुक्ति वा मुक्ति नहीं रुचती, मैं यही निरन्तर चाहताहूं कि तुम्हें श्रौर भरतजी को परस्पर मिलते बोलते देखा करूं। यहां यह समझना चाहिये कि यदि महाराज का रूपान्तर हो जाता तो यह पितापुत्र का विलक्षण दृढ़ानुराग न रहता। अतएव श्री महाराज जी की लौकिक देहयात्रादि नैमित्तिक लीलामात्र है। क्योंकि वसिष्ठसंहिता में समस्त परिकर तथा अयोध्यावासियों को नित्य सच्चिदा-नन्द श्रौर एकरस कहा है, तो श्री महाराज जी तो पिता ही हैं। यह सम्बन्ध अनादिकाल से चला आरहा है, कुछ बीच में नहीं हुआ है।

सदा श्री महाराज दशरथ जी, सदा श्री कौशल्यादि महारानी, सदा दासी सखी सखादि, सभी नित्य हैं, केवल

लीला के लिये तिरोभूत और प्रकट होते हैं, वस्तुतः ज्यों के त्यों रहते हैं। कुतर्कवादी नास्तिकों की मोहमयी वाणी को कौन कान करता है, यदि कोई करे तो वह महा अज्ञ है; क्योंकि मुक्ति तो सरकारी श्वान भी पा जा सकते हैं, विवेकियों की सभा में श्री सर्वेश्वर जी के पिता की मुक्ति होने न होने की कौन बात है। श्री रघुनन्दन जी ने श्री लक्ष्मणजी से कहा कि विभीषण जी हमारे परम उपकारी हैं, अतः इन को सम्मान-पूर्वक राज्य पर स्थित कर आओ। चलता तो मैं भी किन्तु प्रतिज्ञा के वश हूं, इतना कहते ही सरकार के दोनों नेत्र-कञ्जों में आंसू भर आये, वाणी गद्गद हो गयी। इस प्रकार की कृपालुता और स्नेहवश्यता श्रवण कर यदि पराप्रीति नहीं छागयी, तो संसार में जीने को धिक्कार है।

सहज स्नेहसागर श्री जानकीवल्लभ जी में निष्काम अर्थात् सर्वापेक्षाशून्य स्नेहियों का अनुराग पद्मरागमणि के समान निर्मल प्रकाशमय लाली और सरसता-सम्पन्न सचि-क्कण होता है जिसके अनुदिन सेवन से प्रीति भक्ति बढ़ती ही रहती है, कभी घटती नहीं। वरन् यह स्नेह श्री कृतज्ञशिरोमणि जी की ओर और भी सहस्रगुण अधिक बढ़ जाता है। तभी तो नित्यमुक्त गण एकरस हो सदा परधाम में स्थित रहते हैं। केवल अनुराग के करने से सभी स्वार्थ परमार्थ सहज ही में

प्राप्त होते हैं। श्री रामनामरूपानुरागी तो बिना प्यारे के गुण के भुक्ति मुक्ति की कभी चर्चा भी नहीं करते। श्री राजीव-नयन का संग ही सुखसर्वस्व है, और वियोग ही दुःख-समुदाय है, यही उन की भावना बनी रहती है, दूसरी नहीं। यह बात श्री मद्‌रामायण में श्री जानकीजी और श्री लक्ष्मणजी के द्वारा स्पष्ट ही है।

श्रीभरतजी ने सभा के बीच में श्री वसिष्ठजी की न्यूनता सी सूचित करते हुए कहा कि आप सरीखे महात्मा भी ऐसी अनुचित बातें कहते हैं तो दूसरा क्यों नहीं कहेगा। यह रहस्य सावधानतापूर्वक विचारने योग्य है। एक तो श्रीमहाराज जी ने राज्य दिया, उस में भी श्रीकौशल्या-नन्दन जी की सम्मति तथा औरोंकी भी सम्मति, ऐसे राज्य पर स्थित होना; दूसरे कुलमात्र के गुरु और सर्वमुनि-देव पूजित श्रीवसिष्ठजी का तिरस्कार श्रीभरतजी ने किया। क्योंकि उनकी उक्ति श्रीरघुनन्दन जी के स्नेह में बीच डालनेवाली सी थी। इससे यह उचित सूचित हुआ कि कैसा हू बड़ा क्यों न हो, वह यदि श्री प्रियतम प्राण वल्लभजी के स्नेह विरोधी वचन बोले तो उसे न मानना, लोक-वेदका उपहास भले ही सहना। श्रीभरत जी जीवों की शिक्षा के लिये अनुक्षण केवल प्रपत्ति (शरणागति) का ही

अनुष्ठान करते हैं। सब कुछ श्रीराघवेन्द्रजी का है, मैं तो उनके अधीन हूं, मेरा कुछ भी नहीं सब उन्हीं का है, मेरे वह हैं और मैं उनका हूं, यही अभ्यास यदि लौकिक शोक मोह स्नेह त्याग कर बना रहे तो समस्त सिद्धान्तसार का लाभ हुआ, अतएव यही सदा कर्तव्य है।

इस परमस्नेहमय गुण के अनुसन्धान से श्रीरघुनन्दन जी की अतिस्नेहवश्यता का ज्ञान, उनमें अनुरागियों का निरन्तर दृढ़ और निष्काम स्नेह, उसके स्वरूप फल और अमित सुखका ज्ञान और सकामता की न्यूनता यह परम स्वादरस प्राप्त हुआ। यही परम सार फलका फल है। संग छोड़ कर इस गुणका सर्वदा हृदयकञ्ज में अभ्यास करना उचित है।

दोहा:—

उभय निष्ठ अनुराग गुन, अगुन सगुन को जीव।
जुगलानन्य प्रपन्न है, भजो भेंटिहैं पीव ॥

इति श्री युगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सर्वश्रुतिसारसिद्धान्तवर्णने सर्वपरिकर-परस्परस्नेहवर्णनो नाम अष्टत्रिंशत्तमो ऽध्यायः। ३८।

अब श्रीकौशल्यानन्दवर्द्धन-विषयक रसिक सज्जनों की प्रीति-प्रतीतिका वर्णन किया जाता है। श्रीस्नेह-प्रीति-प्रति-

पालक जोमें जो स्नेहियों को उत्तम प्रीति, उसका लक्षण यह है। सब वासनाओं से रहित तदानुकूल्यादिसहित अनुदिन क्षणक्षण लाखों अभिलाष बढ़ानेवाली सन्तोष-निवारिणी धारावाहिका एकरसात्मिका प्रीति, ही उत्तम प्रीति है। भगवत्प्रेमी सज्जन प्रीति करते हैं, पर केवल भोग्य मानकर करते हैं, दूसरी चाह नहीं करते। सरकार के अङ्ग क्षीरसागर के मन्थन समय के परमविशद कोमलरसमय दुग्धफेन से भी करोड़ों गुण अधिक कोमल ललित और स्वच्छतर हैं। चमेली कुन्द गुलाब कस्तूरी केशरादि अमित सुगन्ध इनपर वारे जाते हैं, जिससे प्रीति में भी अनुपम और अलौकिक सुगन्ध ज्ञात होता है। आपकी वाटिका स्फटिक इन्द्रनीलमणि आदि से झलकदार रंगदार बहारदार और रसमयी है। यह प्रीति क्या सरसस्वादमयी सुधा है, वा श्रीराजेश्वरकुमारजी की राजधानी है, वा सबफलभरी कल्पलता है? वा संजीवनी जीवनमूरि है? किसकी शक्ति है कि प्रीति की अचिन्त्य रीति की तर्कना कर सके, क्योंकि वह अतर्क्य है।

जहां प्रीति होती है वहां यही चाह उत्साह आवेशमय हमेशा रहताहै कि इनको क्या दियाजाय कि जिसमें यह प्रसन्न होजावें, कौन ऐसी सुधासनी बात सुनाई जाय कि जिससे इनका मुखकंज सदा प्रफुल्लित बनारहे और ऐसा कौन निर्दूषण

भूषण वसन पहिराया जाय कि जिससे यह आनन्दित रहैं। प्रीतिमानोंकी इसीप्रकारकी अनेक भावनामयी चित्तवृत्ति हमेशा रहती है। अपने स्नेहियोंमें सुमेरुसे बड़े भी करोड़ो अवगुण रहैं तो वह रजके कणके समानभी नहीं देख पड़ता, यही प्रीतिकी रीति है। उनको जो भावे सो करैं, हम तो उनके चेष्टामात्र में मगन हैं, उनकी गारी भी हमें सुधाप्यारी लगतीहै, तिरस्कार आदि तो मधुर मिस्री कन्दसेभी अधिक स्वाद देतेहैं, उनके दुःखमें अति दुःखो उनके मोदमें परमविनोद यही प्रीतिका लक्षण है। यह प्रीतिवालोंकी प्रोति वरुणके फांससे भी अधिक बांधनेवाली होती है, प्रीतिमें मान बड़ाई मर्यादा कुलअभिमान ज्ञान आदि सब लीन होजाते हैं। जैसे मद्यपान करने पर मनुष्य देहाध्यासरहित वेहोश होजाता है। ऐसी यहप्रीति अनूठी होतीहै कि जो करता है वही जानता है। यह प्रीति बड़ी ठगनी होती है, यह मन बुद्धि चित्त आदि सब अनायास ही ठगलेती है, इसकी अपूर्व ही चाल है।

इस प्रीति की एक और भी विपरीत रीति है कि घन में क्षणस्थायिनी बिजली सी, ओलक्ष्मोदेवी सी, दुष्टों की प्रीति सी और साधुजनों के विरोध सी यह भी चञ्चला होती है। बड़े यत्न से स्थिर रहती है, अन्यथा और से और हो जाती है, यह बड़ी विलक्षणा होती है। इसमें छः विघ्न प्रबल होते हैं, एक तो कुसङ्ग, दूसरा सत्सङ्ग में नेह की

न्यूनता, तीसरा श्रीसद्गुरु-पदपङ्कज-पराग में सामान्य प्रेम, चौथा सज्जनों का अपमान, पांचवां वेदविरुद्ध आचरण, छठां जाति-विद्या-महत्वादि-प्रतिष्ठा। इन छःओं का पूरा त्याग होने से यह प्रीति परेश में रहती है, नहीं तो नहीं रहती, चाहे कोई कैसा ही उपाय करे परन्तु चली जाती है। यह भी एक परमसिद्ध साधन है कि मान को दूर करके अपमान को आगे करना अर्थात् सबके साथ अमानी होना। जो विवेकी हैं वे अपने कार्य ही को साधते हैं, उन्हें और किसी की रीति नहीं दिखाई पड़ती और अविवेकी लोक में पुजाने के लिये अपने कार्य को बिगाड़ते हैं। इन्ही बातों पर ध्यान रखने से प्रीति स्थिरा होती है।

और भी छः कार्य प्रीति के लक्षण कहे गये हैं अर्थात् अपनी अच्छी से अच्छी वस्तु भी प्यारेको देना, उनसे लेनेमें कुछ आनाकानी न करना, गुप्त बातें कहना और पूछना, आप प्यारेके घर प्रसाद पाना और प्यारे को अपने घर प्रीतिसे पवाना। यह व्यवहारमयी प्रीति है। उत्तम प्रेमी को तो देने लेनेका कुछ भान ही नहीं है, अतएव प्रीति अनिर्वाच्य है। रसास्वाद-कारी श्रीजानकीविहारीजी को प्रीति अनुरागियों में और अनुरागियों की उनमें सारवती और अनूठी होती है, वह वाणीके गोचर नहीं, वह सनातनी है। यह प्रीति तो ब्रह्मादिकों कोभी दुर्लभ है औरोंकी क्या गिनती है?

श्रीजानकीशजी के प्रति स्नेहीदशावालोंको सातोसागर चुलुक-नीर-सम मालूम होते हैं और सूर्य खद्योतसम जान पड़ता है, सुवर्ण के सुमेरुको वे मिट्टीका ढेला मानते हैं, वे चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिकों को भी अपने घरके गुलाम सेभी तुच्छ समझते हैं, वे चिन्तामणि पारस आदिकों को पाषाण से भी तुच्छ मानते हैं, ब्रह्माण्ड के पदार्थों को वे इन्द्रारुन के फल के समान (जो देखने में सुन्दर और स्वाद में कडुआ है) मानते हैं, कामधेनु को पशुसम, कल्पवृक्ष को तरुसम, और वेदपुराण संहिता तथा अन्य मत मतान्तरों को पक्षियों की वाणीसम मानते हैं, अर्थात् उसमें आसक्ति नहीं करते। कहां तक कहाजाय अपनो देहको भी वह भारके समान मानते हैं। वे सोचते हैं कि कब इस देहका त्याग होगा और कब वह एकरस और सदासंयोगमय रंगीन रहस्य प्राप्त होगा? वे श्रवण कीर्तन निवेदन दास्य सख्य शृङ्गार आत्मसमर्पण आदि सब प्रकारोंसे तत्पर रहतेहुए भुवनभूषण श्रीराजसूनुजी में पगेहुए दिनरात्रि को क्षणके समान बिताते हैं। ऐसे लोगों का राग द्वेष ईर्ष्या वा मत्सरता किसी के साथ नहीं रहती, सबमें इन्हीं दम्पति के प्रताप रूप गुण देखते हैं। वे कभी अपना पूर्वप्रमाद सोच कर रोनेलगते हैं, यह कि हाय यह रस छोड़कर मैंने वृथा नीरस प्रपंचमें इतना समय व्यतीत किया, कभी महामाधुरीमें मत्त हो हंसने लगते हैं अर्थात्

अपने भाग्यको धन्य मानते हैं, कभी नामके गुणोंका गान करते हैं, कभी लज्जा छोड़ कर हंसते हैं, कभी मौन रह जाते हैं ऐसीही अनेको अवस्था प्रीतिमें होती है।

ऐसी प्रीति यदि कदाचित् किसी में ठहर जाय तो फिर ऐसा कौन आनन्द है, कि जिस की प्राप्ति उसे नहीं हो सके। ब्रह्मा विष्णु महेशादि सभी देव मुनिगण उसको वार वार नमस्कार करते हैं। वे ब्रह्मादिकों की बहुकालस्थायिनी उपाधिशून्य विभूतियों को भी वमनसम जान कर हृदय से दूर किये रहते हैं, वे नारीमात्रको नागिनी बाघिनी डाकिनी विषबेलि और दावानल की ज्वाला से भी तेज मानते हैं, उन्हें स्पर्श करने और देखने में भी उनको डर होता है। वे प्रतिष्ठा को शूकर की विष्ठा के समान, मान को मदिरा के समान और गौरव को कुंभीपाक के समान जानते हैं, पुलकित और गद्गद कण्ठ तो क्षण क्षण रहा करते हैं, वे सब ब्रह्माण्डों को पावन करने में समर्थ हैं, दश वीस पचास सौ की क्या गिनती है ? उनकी स्नेहतरंगिणी का प्रवाह कभी नहीं रुकता। उनके स्नेहकी दृढ़ता ऐसी है कि सब ईश्वर भी लगें, तो वह न डिगे।

मेरे सरकार श्री महाराजकुमार जी अलबेले छैल बने रहें, हम उन्हीं के हैं सन्देह नहीं, इस प्रकार की जो रति की

दृढ़ग्रन्थि पड़ी है, वही प्रणय कहलाती है। यह प्रणय शृंगारादि भक्तिरसों का पोषक है। ऐसे ही अनेक प्रकार के विलक्षण लक्षण विचक्षणगण कहते हैं, जिनका अन्त नहीं, इन का वर्णन करके पार पाने में कोई समर्थ नहीं हो सकता, तोभी यहां निजमतिअनुसार कुछ कहा गया है। यह प्रीति अचिन्त्या है। इसी को ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, भक्तिवाले भक्तिप्रतिपाद्य सगुणस्वरूप कहते हैं और इसी में समस्त संसार है, देख लीजिये, व्याघ्रआदि दुष्ट जन्तु भी प्रीति के वश हो जाते हैं; औरों की क्या कहनी है। अत एव सब साधनों की आशा छोड़ प्रीति होने के लिये यत्न करना उचित है। सब ग्रन्थों की यही सम्मति है कि परेश्वर प्रीति से प्रसन्न होता है, अन्य साधनों से नहीं।

श्री रघुनन्दन जी के गुणसमुदायवर्णन में यद्यपि श्री लाड़िली जी के गुण भी आगये, रूप में कुछ भेद नहीं, तथापि विना पृथक् कुछ कहे नहीं रहा जाता, अतः श्रीमती जी के कुछ स्वरूपमय गुण कहे जाते हैं।

श्रीमतीजी के वचन दास के लिये पाक सुधाकन्द आदि से भी सौकोटिगुण मधुर स्वादमय हैं, जिनके सुनने का उत्साह चाह श्री सनेहसागरजी को अनुक्षण रहा करता है। जावक से रंगीन मृदुल मनहरण चरणसरोज प्रियतममन-मोहन और नूपुरसहित शोभित हैं, जहां परमरसिकों के

मनमधुप निरन्तर मकरन्दपान से मत्त हो गुञ्जार करते रहते हैं। नखों की छटा मानो छविमेघों की घटा है, वह सरस लावण्यप्रकाश बरसाता है, जिनकी आभा के अंशांश से ब्रह्म व्यापक और निर्विकार कहलाता है। ऐसी ही अंगुलियां जगमग भूषणों से जगमग हो रही हैं। नख से शिख तक सर्वाङ्ग सुखमा की खान हैं। कभी (स्वप्नमें भी) जिनमें सूर्य का ताप नहीं लगने पाता, अतएव अतिकोमलतर अङ्ग हैं। रमा भवानी इन्द्राणी आदि सभी जिनकी माधुरी अवलोकन कर पहले सङ्कोच पाती हैं पीछे दासी हो सेवन करती हैं। कञ्जसे भी अत्यन्त कोमल रसमयी भूमि में पांव धरते समय उनकी सुकुमारता विचार कर सखियों और प्रीतम को भय होने लगता है और पांव कभी भार सा जान पड़ता है, और कहां तक कहा जाय।

श्रीकिशोरीजी वीणादियन्त्रों के बजाने में और समझने में परमकुशला हैं, नृत्यभेद तथा अनन्त राग रागिणी यथार्थतः जानती हैं। आप को ऐसी चतुरता गानादि कलाओं में है कि प्रियतम को आश्चर्य हो जाता है कि यह अद्भुत रागिणी कहां से निकली, मैं ने तो कहीं इस रागिणी का नाम तक नहीं सुना था। ऐसा कोई दिन नहीं कि बिना गानतान के बीते। आप मणिजड़ित, सुगन्धों से सुगन्धित, विचित्र चित्रकारी-वारी, अनेक महल अटारियों में सखियों से युक्त हो प्रीतम के

संग रंग-उमंग-समेत निरन्तर मोद प्रमोद विनोद करती हैं। वहां रमा गौरी गिरा आदि करोड़ों देवकन्या नागकन्या किन्नरी आसुरी नरी सब सेवन में लगी रहती हैं, चामर व्यजन आदि होते रहते हैं। आप सखियों के करकमलों से समर्पित विविधसुगन्धसम्पन्न दिव्य ताम्बूलबीटिका चर्वण करती हैं। आप के बदन की ललाई में श्री लालजी लट्टू होकर वार वार छटा निहारते हैं। आप अनेक सुकुमारी नायिकाओं के अद्भुत हास विलास लाड़ को पाती हैं। कभी उदासीनता न होने पावे इस विचार से प्रीतमसहित सभी सखियां आप का मन जोगाती रहती हैं। काञ्ची आदि भूषण-सम्पन्न सुवेश तनुतर कटिप्रदेश सौन्दर्यनिधान और विलासमय है। परमयौवनमयी रसमयी त्रयोदशवर्ष की अवस्था सर्वदा एकरस बनी रहती है। जैसे श्री महाराज-कुमारजी षोड़शवर्ष के नित्यकिशोर रंगबोर चित्तचोर बने रहते हैं वैसे ही श्री किशोरीजी को जानिये। रसिक-सुखसम्पत्ति श्री दम्पतिजी के सदा एक वय, एक प्राण, एक मन और एक ही सब रहस्य रहा करते हैं।

श्रीसुकुमारी जी नित्य अखण्ड सौभाग्यलक्ष्मी से सम्पन्न हैं। आप के समस्त लक्षण परम दिव्य भव्य नव्य और अनुपम हैं, आपके श्रीसौभाग्य का सरकार भी नहीं पार पाते क्योंकि वह अनन्त हैं। ज्योतिष सामुद्रिक तथा उत्तम चिन्हगुण-

प्रकाशक शास्त्रसमूह केवल श्री जानकी जी में ही सफल अर्थात् संघटित हुए, औरोंमें कहां पायाजायगा ? आप के मन वचन तनमें शास्त्र-लोक-सम्मत अपलक्षणों का स्वप्नमेंभी लेश नहीं हुआ है। श्री किशोरी जी की कौन बात, उनकी दासी की दासी की दासी भी अपनी कान्ति से रमा आदिकों के सौभाग्य-सौन्दर्य को तुच्छ करती है। श्री जनकनन्दिनी जी रूप सौन्दर्य माधुर्य्य कान्ति लावण्य सौगन्ध्य आदि दिव्य अनन्त गुणों से मण्डिता हैं। अनेक जन्मों से थकी हुई सरस्वती आप-साक्षात् तथा औरों में वचन रूपसे स्थित हो केवल श्रीजानकी जी के रूपकथन में विश्राम पाती है, और किसी के वर्णन में उन्हें बहुत दुःसह दुःख होता है; क्योंकि उसमें श्री रघुनाथजी के नाम और रूप के विना दूसरी तरह के वाग्विलास जो लोग सामान्य वा विशेषरूप से करते हैं उससे वह थक जाती हैं। श्री जानकी जीके परमस्वच्छ यश नाम आदि श्री प्यारे जी के समान ही हैं। क्योंकि दम्पती जी के नाम रूप गुण में कुछ भेद नहीं है, यही सिद्धान्त सार है। श्री जानकी जी के अंश से उत्पन्न मूल प्रकृति के भ्रूविलास से करोड़ों ब्रह्माण्डों के स्थिति संहार जन्म हुआ करते हैं, ऐसी श्रीजानकी जी में जिन अभागोंका स्नेह निश्छलभाव से नहीं हुआ वेही मायामयी चक्कीमें असंख्य कोटिवार पीसे जाते हैं और पीसे जायंगे। किन्तु जिनका स्नेह है, वे परमानन्दका निर्विवाद स्वाद लेते हैं

और सदा लेंगे। मैं दृढ़तर लीक खींचकर कहता हूं कि यदि शीघ्र बन्धन से छूटने की इच्छा हो तो अनन्यशरण श्री जानकीजी के हो जाओ, इसीमें अनमोल अमल कुशल है, जिस परात्पर वस्तु के लिये सदा पचते हो वह अनायासही मिल जायगी। श्री लड़ैतीजी में अविरल स्नेह हुआ तो सब काम सफल हुआ। किसी व्याज से भी श्री सीतादिक नाम के उच्चारण होने से प्यारे वशीभूत हो जाते हैं। वही उपाय करना उचित है कि जिससे श्री प्यारी जी में प्रीति बढ़े, जिनकी कृपादृष्टि की लालसा श्री लालजी को अनुक्षण बनी रहती है दूसरे की कौन कहे। यह अखिल विश्व और वह परम दिव्य त्रिपादविभूति दोनोंही जिनकी अनुग्रहमयी दृष्टिके अधीन हैं; और क्या कहा जाय।

परमसिद्धान्तज्ञाता श्री रघुनाथ-कृपापात्र श्री हनुमान जीने भी यही कहा कि श्री रघुवरप्राणप्यारी सुकुमारी श्री किशोरीजी के सदृश दूसरी पाने के लिये यदि अखिल ब्रह्माण्डों में श्रम करके अन्वेषण किया जाय, तो भी कोई मिलना कठिन बात है, क्योंकि इन के समान यही हैं, यह बात श्री मद्रामायण में प्रसिद्ध है। और भी श्री वायुनन्दनजी ने कहा कि त्रैलोक्यराज्य तथा समस्त भोग ऐश्वर्य भी श्रीजानकी जीके कोटितम (करोड़वें) अंशके समान भी सुखदायी नहीं है, क्यों कि श्री किशोरी जी अनूठी और अनुपम हैं।

श्री जानकी जी को सुधारससानी वाणी सुन गुनकर श्री मारुत-नन्दन जी ने कहा कि हे सर्वेश्वरी शरणागतपालिनी आपके स्वाभाविक वचनामृत से हम तृप्त हैं। आपके इस मधुर रसमय वचन को सुन कर भुक्ति मुक्ति सब फीकी जान पड़ती है, क्योंकि यह परमज्ञाताओं का भी सर्वस्व है। आप की रसमयी चेष्टा श्रीरघुनन्दन जी के रसमय क्लेशविशेष को दूर करनेहारी है, आप श्री जीवनप्राणजी के हृदयमें अमित भांति से परम विनोद बढ़ाती हैं, और पतिव्रताएं आपके पदपंकज-पराग का सेवन स्मरण करके स्वधर्मआरूढ़ होती हैं।

निःस्वार्थ भाव से मित्र शत्रु मध्यस्थोंका मन वचन से निरन्तर और स्वाभाविक ही हित चाहने को दया कहते हैं। १। देश काल विचारकर आप दुःख सह कर के देनेको दान कहते हैं। २। शरीर मन और वचन के दण्ड को तप कहते हैं। शीत उष्ण सहकर निरालस हो गुरुजन और सज्जनों की अत्यन्त निष्काम सेवारूपी दण्ड को शारीरिक तप कहते हैं। राग द्वेष और कामादि बड़े शत्रुओं को जीतना और प्राणायाम प्रत्याहारादि द्वारा विषयों को जीतकर मन को दण्ड देना मानसिक तप कहलाता है। मिथ्या तथा क्रूर वा कठोर वचन न निकलने देने वा मौन रहने द्वारा मनके दण्ड को मानसिक तप कहते हैं। ३। शौच दो प्रकार का है—वाह्यशौच और अन्तःशौच। निष्कपटभाव और शमता आदि गुणों से अन्तः-

करण पवित्र होता है और जल तथा मृत्तिका आदि से बाहर के शरीरको शुद्धि होती है। ४। ये चारो गुण धर्मरूपी वृषभ के मनहरण सुखकरण चारो चरण हैं। जब श्री जानकी जीकी नवीन नखकान्तियों में अनुराग होता है तब सभी गुण अनायास ही और सहजही रीति से उन में आजाते हैं। श्री किशोरीजी अपने परात्पर ऐश्वर्य को छिपाये रहती हैं, जिस से लीलारसमें अत्यन्त विनाद पाती हैं। प्रकट लीला करने में यही तात्पर्य है कि सभो जीव कृतकृत्य हों और परममाधुर्यजीवी गण अपना अभिलाष पूरा करें।

श्री जानकी जी असंख्य कोटि सखियों से परिसेवित रहती हैं, जिन में तैंतीस मुख्य हैं, उन्हीं के आश्रय से माधुर्य ऐश्वर्यादि सभी रहस्य सिद्ध होते हैं। एक एक सखोकी करोड़ों करोड़ सखियां किङ्करी हैं। उन तैंतीसों के नाम लिखे जाते हैं, जिन के श्रवण करने से सभी वस्तुएं तुच्छ जानपड़ती हैं और श्री जानकी जी में तथा परिकरों में अखण्ड एकरस सनेह बढ़ता है। श्री, भू, लीला, उत्कृष्णा, क्रिया, योगा, उन्नति, ज्ञाना, पर्वी, सत्या, अनुग्रहा, ईशाना, कीर्ति, विद्या, इला, क्रान्ति, लम्बिनी, चन्द्रिका, क्रूरा, कान्ता, वैभीषणी, लान्ता, नन्दिनी, शोका, शान्ता, विमला, शुभदा, शोभना, पुण्या, कला, मालिनी, महोदया और आह्लादिनी। ३३। येही तैंतीस सखियां शक्तिशिरोमणि श्री जानकी जी की प्रधान हैं। ये सब श्री

जानकी जी की भृकुटि देखा करती हैं, कि जो आज्ञा होय सो करें। अब इनके स्वरूप गुण संक्षेप से कहे जाते हैं;—

श्री देवी समस्त शोभा श्री और विभूति श्री जानकी जी के सम्बन्धियों को देती हैं, औरों को केवल सुकृतानुसार चार दिनों के लिए सुख प्रेरणा करती हैं। भू-देवी समस्त विश्व का आश्रय हैं अर्थात् इन्हीं से समस्त विश्वका जन्म आदि होता है। लीलादेवी से लौकिकी अलौकिकी निखिल लीलाएं हुआ करती हैं। ये तीन शक्तियां अत्यन्त श्रेष्ठा हैं। उत्कृष्णाजी जीवों को सब प्रकार की उत्कृष्टता प्रदान करती हैं । क्रियादेवी समस्त शुभ क्रियाओं को प्रेरित करती हैं। योगादेवी अष्टाङ्ग योगादिकों को अधिकारियों के चित्तमें प्रेरित करती हैं। उन्नतिदेवी सब वस्तुओं की बड़ी वृद्धि कराती हैं। पर्वीदेवी जय पराजयों की नियन्त्री हैं। सत्या जी अपनी कृपाकोर के कटाक्षों से सत्यकी प्रेरणा करती हैं। श्रीअनुग्रहा जी स्नेहियों के चित्त में दया अनुकम्पा आदि गुणों की प्रेरणा करती हैं। श्री ईशानादेवी विमुखों के मनमें समस्त सुदुस्तर नानात्व भेदों को बसाती हैं और सज्जनों को ज्ञानादि साधन प्राप्त कराती हैं । श्रीकीर्ति देवी यश देती हैं। श्री विद्यादेवी के प्रसाद से गणेशादि देव दैत्य मनुज गण सभी विद्या पाते हैं। इला देवी के प्रसाद से गद्य-पद्य-मयी काव्यरूपा मनोहारिणी वाणी निकलती है।

कान्ता देवी कान्ति बढ़ाती हैं। श्री विलम्बिनीदेवी की कृपा से श्री रघुनन्दन जी के नाम रूप धामादि चित्तगोचर होते हैं। श्री चन्द्रिकादेवी सुधामय शीतल प्रकाश देनेहारी हैं। क्रूरा देवी विमुखों के तन मन वचन में क्रूरता देती हैं, और सज्जनों की क्रूरता हरण करती हैं। कान्ता जी सबों में राग मोह शुभ अशुभ को प्रेरणा करती है। श्री विभीषणा जी असज्जनों को भय शंकादि देती और सज्जनों का भय निवृत्त करती हैं। श्रीक्षान्ता देवी क्षमासहित शान्तिगुण देती हैं। नन्दिनी जी यथाधिकार आनन्द देती हैं। शोका जी भगवद्विमुखी जीवों को शोक देती हैं और आप शोकरहित रहती हैं। शान्ता जी शान्ति अर्थात् निर्विकल्प समाधिस्थ मति का अवस्थाविशेष देती हैं। श्री विमला जी सज्जनों को बुद्धिकी विमलता देती हैं। श्री शुभद्रा जी जीवोंपर अनुग्रह कर के हृदयमें सद्गुणों को बसाती हैं। शोभना जी परमसुखमा देती हैं। श्रीपुण्या जी जिसपर कृपा करती हैं पुण्यमय करदेती हैं। कलादेवी समस्त कलाओं की प्रेरणा करती हैं। श्रीमालिनी जी व्यापकों को व्यापकत्व देती हैं। श्री महोदया जी भक्ति विभव प्रकृति सब वस्तुओंकी प्रेरिका हैं। श्री आह्लादिनी देवी जी श्री युगलसरकारके अभिराम नाम और अनूपरूप का आह्लाद स्नेहियों के हृदयमें झलका देती हैं। येही शक्तियां श्री जानकी जी की सखियां हैं। इनका परत्व

कहने को यद्यपि कोई समर्थ नहीं है तथापि संक्षेप से कुछ यहां कहागया। इन सखियों के पदकमल और नामों की उपासनासे सब मोद विनोद अनायासही प्राप्त होते हैं। ऐसी श्री जानकी जीकी सखियां हैं।

श्रीजानकी जी स्वाधीनपतिका हैं अर्थात् सौन्दर्यादिगुणों से अपने पति को अधीन किये हुई हैं और सब दिव्य गुणों से मण्डिता हैं। जैसे श्री जानकीबल्लभजी के समान अन्य कोई नहीं, वैसे ही श्री स्वामिनीजो के सदृश भी कोई नहीं, वैसे ही श्री दम्पतिपरिकर के समान और कोई नहीं है। श्रीस्वामिनोजी में श्री राघवजी से भो अधिकतर क्षमा और शरणपालकत्वादि गुण हैं और करुणा (दया) से हृदयकञ्ज द्रवीभूत रहा करता है अर्थात् करुणा श्रो स्वामिनीजी में अधिक है। जैसे श्री रघुवंशभूषणजी महात्माओं द्वारा सेवित रहते हैं वैसे ही श्री स्वामिनीजी भी सबों से बन्दिता हैं, जिस पर श्रो सर्वेश्वरीजी की करुणादृष्टि होती है उसी पर सरकार रीझते हैं, वह चाहे जैसा होय, यह बात श्री मद्रामायणमें भली भांति बिचार कर देख लीजिये। केवल श्रीजानकीजी के अन्वेषणसम्बन्ध से श्रीहनुमानजी के वश्य हुए और अपने को किङ्कर कहा। केवल श्रीप्यारीजो के ही सम्बन्ध से सुग्रीवादि कीसगण से सख्यभाव माना। औरों को भी उन्हीं के सम्बन्ध से परिवार सहित परमपद

दिया, देते हैं और देंगे। श्रीरघुनन्दनजी के सनेहियों पर श्रीजानकीजी को अत्यन्त करुणा (दया) और सनेह रहता है। दोनों ही परस्पर प्रेम की मूर्ति हैं। इनकी प्रीतिरीति अनिर्वाच्या है। श्रीकिशोरीजी के वात्सल्य सौशील्यादिगुण श्री रघुनन्दनजी से बढ़े हुए हैं। छोटे वा बड़े जो जो मनोरथ श्रीरघुनन्दनजी के हृदय में उठा करते हैं, इन सबों को श्रीमहाराजकुमारजी पहले श्रीजानकीजी से निवेदन कर पीछे तदिच्छानुसार पूर्ण किया करते हैं।

श्री जानकी जी श्री रघुनन्दन जी की प्राणजीवनी धर्मपत्नी हैं, श्री रघुबर जी श्री प्रिया जी को सब कार्य करने में अग्रगण्य बनाये रहते हैं। आप सुचारु श्रीजानकीमुखचन्द्र के चकोर बने रहते हैं, अनुक्षण उनके सौन्दर्यामृत को एकटक पान किया करते हैं, उनके नवीन वचन सुनने के लिये प्रवीण श्रीरसिकराज जी मृगसम लुब्ध हुए रहते हैं सरस छविरस के मीन बने रहते हैं। श्री लाड़िली जी के सुवासित अंगों पर मधुर मधुप हो मत्ततापूर्वक गुंजार करते रहते हैं, सभी अंगों में सदा श्री लाल जी बंधे रहते हैं, किसीप्रकार नहीं छूटसकते, क्योंकि यह स्वादमय बन्धन है। श्री स्वामिनी जी विलक्षण और अद्भुत अद्भुत छविगुण कला की छटा अनुक्षण प्रादुर्भूत कर श्री प्राणबल्लभ जी के मन को हरलेती हैं। शृंगाररसकी पूर्णता यथार्थ में यहां ही है, क्योंकि दोनो

ही परमस्नेह और प्रणय के सागर हैं अन्यत्र किसी में ऐसे ये नहीं दीखते। श्री चतुर्भुज नारायण आदि मूर्तियों में कुछ कुछ माधुर्यरस पायाजाता है, पर उन के साथ साथ बहुत से माधुर्यविरोधी पदार्थ भी हैं जिस से वहां पूर्ण माधुर्य नहीं हो सकता, यहां तो सबप्रकार में सब रस पूर्ण हैं। एक तो चक्रवर्तिकुमार सर्वमाधुर्योपयोगी वस्तु सम्पन्न-कुल, दूसरे द्विभुज, तीसरे धनुषधारी, चौथे श्रीप्रमोदारण्य-विहारी, पांचवें अनेक राजकन्या देवकन्या किन्नरी गन्धर्वियों से सेवित अखंड निर्भय बहारदार विहार इत्यादि समस्त गुण-गण नवरंग उजागर में पायाजाता है, अतः यही सबके ध्येय और ज्ञेय हैं।

ऐसे ये युगलसरकार सबगुणों से पूर्ण हैं, सकल वाञ्छा-प्रद हैं, इन्हीं दोनों मूर्तियों के नाम और गुणों के सभी आश्रित हैं; अतएव मैं सबप्रकार इन दोनों मूर्तियों के शरण में हूं। जिन दोनों की कृपा से युगलसरकार का यथार्थ परत्व माधुर्य औरों को जानपड़ता है, वेद पुराण स्मृति संहिता तन्त्र इति-हास श्रीमद्रामायणादि सभी केवल श्रीमहाराजकुमारी और श्री महाराजकुमार ही के नाम रूप गुण धामादिकों के परमपरत्व माधुर्य और उक्त दम्पति की अत्यासक्ति का ही निरूपण करते हैं। जैसे चन्द्रिका और चन्द्र का योग, सूर्य और प्रभा का संयोग दक्षिणा और यज्ञ का संयोग और भक्ति

श्रीर ज्ञान का संयोग सदा नित्य ही रहा करता है, उसीप्रकार श्रीयुगलविहारिणी विहारी जीका नित्य अत्यन्त संयोग है, ये कभी पृथक् नहीं होते। यह बात श्रीमद्वाल्मीकीय उत्तर-काण्ड आदि में स्पष्ट ही देखीजाती है। श्रीदम्पति के गुण तो पाताल समुद्र और आकाशसे भी करोड़ों गुण अथाह अपार और गम्भीर है, तो भी मैंने श्री जानकीजीवन जीके गुणों से मोहित और प्रेरित हो अपने मन के मोद और विनोद के लिये कुछ वर्णन कर अपने असंख्य जन्मों के ताप को श्री मनोहर जी के गुणामृतकथन द्वारा भलीभांति शान्त किया।

हे शरणागतपाल श्री नृपलाल मनहरण श्री जानकी-रमण जी, मुझपर इसीप्रकार की कृपादृष्टि होवे कि जिस से सब नेह नाते सम्बन्ध एकत्र हो कर आप के गुण नाम और माधुरी में एकतार तदाकार होवे। मैं यद्यपि सब अवगुणोंकी राशि हूं, तोभी आप को स्वीकार ही करते बनेगा, क्योंकि मेरा और आप का दिव्य और सनातन सम्बन्ध अनिवार्य है, इस से अब मेरे अपराध क्षमा हों। मैंने आप से विमुख हो अत्यन्त दुःसह दुःख पाया, अब छल कपट छोड़ आप के शरणमें हूं, मुझे नजर से जुदा न कराइये; यदि कराइयेगा, तो सुयश में दाग लग जायगा, कहां लों प्रार्थना करूं। सौ बातकी एक बात यह है कि जैसी आपकी आत्मीयता करनेकी रीति है वह कीजिये, मुझे भुक्ति मुक्ति

मान बड़ाई प्रभुत्व आदि स्वप्न में भी अपेक्षित नहीं हैं, केवल यही चाह है कि सरकार के गुणगण में पगूं। मैं आप का हूं ३, जो चाहिये कीजिये।

इस प्रीतिगुणके श्रवण मनन निदिध्यासन से साक्षात् श्री जानकीवल्लभजी का अनूप स्वरूप होना, सब संशयों की अत्यन्त निवृत्ति और नामादि में रुचि, येही फल श्री सरकारके सनेहियों को प्राप्त होते हैं। इस गुणसमुदाय को जो शुद्ध होकर विचारपूर्वक पाठ करेंगे, वे अनायास ही भवपाशों का छेदन-भेदनकर परात्पर अभिराम धाम में निस्संशय अवश्यही जायंगे और सरकारके तो अनुक्षण परम प्रियतम होंगे।

दोहा

श्रीश्री सहज सनेह रस, सागर जुगल सुजान।
प्रीति सगुन गुरुफन कियो, जुगल अनन्य अजान॥ १॥
मेरी मति गति तुच्छ अति, किमि बरनै गुन लाल।
कह्यो सो श्री सद्‌गुरु कृपा, धारि आपने भाल॥ २॥
बोधक रस गुन भक्ति भल, सोधक कलिमल मूल।
श्री रघुवर गुन आदरस, सरल स्वच्छ अनुकूल॥ ३॥
बिरच्यो बिमला मध्य यह, निकट नेत्रजा मीत।
जुगलानन्य सरन हरन, मोह महान अनीत॥ ४॥
जे अतिसय रस स्वाद में, पगे जगे जग मांझ।
तिनको प्रानसमान यह, ह्‌वैहै भोरहु सांझ॥ ५॥

श्री परिकर गुरु वदन तें, आज्ञा पाय प्रकास ।
भाषा वार्त्तिक हौं कियो, प्रिय गुण दर्पण खास ॥ ६ ॥
लघुमति मोरि न देखबी, लखब बस्तुवर सार ।
काम-मनी-सम बुधनको, खानि को कौन बिचार ॥ ७ ॥
जहां सरस माधुर्य तें, होय कहूं विपरीत ।
तेहि, बनाय भल दीजिये, करि मोपर वर प्रीति ॥ ८ ॥

—:*:—

इति श्री युगल दम्पति पदपङ्कज परागाश्रित लघुकिङ्कर श्री युगलानन्यशरण बिरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे सर्व-श्रुतिसार सिद्धान्त प्रतिपाद्य श्रीरघुवरगुणदर्पणे प्रीतिगुण-प्रदर्शनो नाम ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः । ३९ ।

उपसंहार।

दोहा।

माघमास तिथि बेदबर, असित पच्छ कविवार।
पहर उपर दिन चढ़त के, समय पूर सुखसार॥ १॥
गुफा सफा आनन्दमय, तामे बैठि अनन्य।
श्री सरयू पर प्रीति के, तीर भयो गुन जन्य॥ २॥

अब पूर्वोक्त परात्पर गुणगणों के यथार्थ अधिकारी बड़भागी अनुरागी रसिक सनेहियों के गुण संक्षेप से एक अध्याय में वर्णन किये जाते हैं। क्योंकि श्रीरघुनन्दनजी अपने गुणों से ऐसा प्रमोद नहीं पाते, जैसा कि अपने सम्बन्धियों के गुणों से रोमरोम से तृप्त होते हैं; अतएव अवश्य ही उनके गुण वर्णन करने योग्य हैं। जैसे सरकार के गुण अनन्त हैं वैसे ही उनके भी हैं, किन्तु थोड़े ही यहां कहे जाते हैं। पहले तो गुणों के नाम सुनिये:— प्रपन्नत्व, प्रपत्तिनैष्ठिकत्व, निर्भरत्व, उपायशून्यत्व, परतन्त्रत्व, अप्राकृतत्व, ऐकान्तिकत्व, नित्यरङ्गित्व, परमैकान्तिकत्व, सम्बन्धज्ञातृत्व, शेषभूतत्व, शेषवृत्तित्व, नित्यसूरित्व, मुमुक्षुत्व, अविधिगोचरत्व, परकाष्ठत्व, उपायादिस्वरूपवोध्यत्व, आत्मारामत्व, कृपालुत्व, अकृतद्रोहत्व, सहनशीलत्व, सत्यसारत्व, अनवद्यात्मत्व, समत्व,

सर्वोपकारित्व, निर्दम्भत्व, अकामित्व, अमानित्व, शमदम-सम्पन्नत्व, अकिञ्चनत्व, मृदुत्व, अनीहत्व, मितभोक्तृत्व, स्थिरत्व, अप्रमत्तता, गम्भीरता, धैर्य, षड्गुणजयित्व, अमानित्व, मित्रता, कारुण्य निराशता इत्यादि ४० से ऊपर मनोहर दिव्य मङ्गलमय अनुपम गुण हैं। इन्हीं गुण-वालों के वश्य होकर श्रीप्राणजीवनजी पीछे पीछे फिरे फिरते हैं।

अब इन के लक्षण भी क्रमशः अति संक्षेप में लिखे जाते हैं। प्रपन्नत्व का यह अर्थ है कि मन वचन काय से श्रीमज्जानकीजानि जी के रसामृतमय सुयश का पान कर परममोद में प्राप्त होना, अन्य सभी वासनाएं जिनकी निरस्त हो गई हों, वेही परम धन्य प्रपन्न हैं।१। चराचर जीवों में परात्पर अन्तर्यामी श्रीरघुनन्दनजी का अनुसन्धान करना और निर्वैर रहना और सब साधनों को छोड़ देना यही प्रपत्ति-निष्ठा गुण है।२। श्रीजानकीवल्लभजी के वात्सल्य कृपादि परम दिव्यगुण विचार कर बारबार तदाकारवृत्तित्व लगाये हुए तदा-श्रय होकर अपनी देह के भरण पोषण की तथा परलोक-प्राप्ति की चिन्ता त्याग देना और अचिन्त्य महामोद के साथ रहना ही निर्भरत्व गुण है।३। श्रुतिसंहितादिप्रसिद्ध कर्म ज्ञान भक्ति उपा-यों के अनङ्गीकार-पूर्वक (अर्थात् उनकी चिन्ता छोड़) श्री जानकीजीवन जी से सम्बन्ध और उनकी शरण में दृढ़

प्रीति रहना यही उपायशून्यत्व गुण है। ४। सर्वदेश सर्वकाल और सर्वावस्था में सन्तत संकल्प विकल्प छोड़ अनुक्षण अपनी तदधीनवृत्ति विचारना ही परतन्त्रता गुण है।५। अपने स्वरूप को स्थूल सूक्ष्म और कारण इन तीनों देहों से भिन्न और चिन्मय एकरस तथा तुरीय जानना यही अप्राकृत गुण है।६। ऐकान्तिक सरकारी सज्जनों के चरितामृत पान के अतिरिक्त अन्य कार्य तनिक भी नहीं अच्छा लगना और चित्तवृत्तिका गंगा सरयू के धाराप्रवाह के समान स्वरूप में लीन होजाना, यही उत्तम स्नेह ऐकान्तिकत्वगुण कहलाता है। ७। नित्यरंगित्त्व गुण भी यही है। ८। मन्त्रराज तथा शरणागत मन्त्र के अर्थका, जपसहित और विकाररहित चित्त से निरन्तर मननकरना परमैकान्तिक गुण कहलाता है। ९। अपने और सरकार का नाता सद्गुरुओं के द्वारा दृढ़ करने को सम्बन्धज्ञातृत्व गुण कहते हैं। १०। श्री राघवेन्द्र जी के स्वरूप को पर ब्रह्म का अंश मानना, स्वयं और का अंश न बनना केवल श्री रघुनन्दन जी का सब प्रकार से कह-लाना यही शेषभूतत्व गुण है। ११। श्री जानकीबल्लभ जी का मैं हूं और ब्रह्माण्डसमूह तथा तल्लोकाधिष्ठाता गण सरकारी हैं इसी विश्वास को सदा बानाये रहाना शेषवृत्तिपरत्व गुण है। १२। निज परस्वरूप को दृढ़ भाव से सब-दिव्यगुणसम्पन्न अखण्ड सच्चिदानन्द विहारी मानना नित्यसूरि-

त्व गुण है। १३। मुमुक्षुत्व गुण यह है कि उपाधि (विघ्न) भूत कार्यों को छोड़ कर आवश्यक साधनों समेत श्री लली· लाल जीका सम्बन्धानुकूल भजन करना। (वैराग्य विवेक मुमुक्षुत्व शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान येही आवश्यक साधन हैं)। १४। बाहर के चिह्नों से रहित भीतरी स्नेह से सहित होना अविधिगोचरत्व गुण है, जो श्री शुकदेवादि महामुनियों में स्पष्ट झलकता है। १५। अत्यन्त सम्बन्धाभिमानपूर्वक ध्येयाकार रूप से तदात्मचित्तत्व को परकाष्ठत्व गुण कहते हैं। १६। भक्ति शरणागति आदि उपाय, श्री युगल· सरकार उपेय, अपनारूप उपेत, चरणानुराग फल और विरोधी विजातीय संग, इनपांचों बातों को भलीभांति जानना ही उपायादि स्वरूपज्ञान है। १७। देहादिकों का अध्यास छोड़कर केवल स्वरूपमाधुरी में मग्न होजाना यही आत्मारामत्वगुण है। ये अष्टादश मुख्य और रसमय गुण हैं, ये केवल अत्यन्तानुरागियों में पाये जाते हैं।

अब और गुणों के भी संक्षिप्त अर्थ कहेजाते हैं। सबजीवों पर हितवाञ्छासहित बर्ताव को कृपालुतागुण कहते हैं।१६। कोई अपने साथ कैसाही उपद्रव करे, पर उसपर द्रोह कभी न करने को अकृतद्रोहत्व गुण कहते हैं। २०। सबकी निन्दादि तथा शीत ऊष्ण के उपद्रव सहना और प्रसन्न रहना यही तितिक्षागुण है। २१। सत्यस्वरूप श्री रघुनन्दन जी को वा

सत्यभाषण को सार मानना यही सत्यसारता गुण है। २२। आत्मा (चित्त मन वा देह) का ईर्ष्या मात्सर्य आदि अवद्यों (दोषों) से रहित होना अनवद्यात्मता गुण है। २३। मित्र शत्रु और उदासीनों के साथ एकदृष्टि से बर्ताव करने को समत्व गुण कहते हैं। २४। सब जीवों का उपकार करने में तत्पर रहने को सर्वोपकारित्व गुण कहते हैं। २५। सब के साथ घमंड न करने को निर्दम्भत्व गुण कहते हैं। २६। काम-द्वारा बुद्धि के नहीं हत होने को आकामित्व गुण कहते हैं। । २७। मान प्रतिष्ठा तनिक भी न चाहने को वरन् औरों को मान देने को अमानित्व कहते हैं। २८। मन और इन्द्रियों के दमन को शमदमसम्पन्नता गुण कहते हैं। २९। धनसंग्रह-हीनता को अकिञ्चनत्व गुण कहते हैं। ३०। जगत के कठोर पदार्थों को तुच्छ जानकर परम कोमल अमल युगलसरकार के रस में लीनता पूर्वक मृदुभाव को मृदुत्व गुण कहते हैं। ३१। शास्त्रानुसार भीतर और बाहरकी पवित्रता को शुचित्व गुण कहते हैं। ३२। वस्तुमात्रकी चेष्टा से रहित रहते हुए और मन वचन कर्मद्वारा सरकार के प्रिय होते हुए प्राकृत ईर्षा शून्यता को अनीहत्व गुण कहते हैं। ३३। पाचन-शक्ति के अनुसार नित्य एकही प्रमाण से अल्प भोजन को मितभोक्तृत्व गुण कहते हैं। ३४। अत्यन्त उद्वेग से रहित हो अपने मनको दृढ़ रखने को स्थिरत्व गुण कहते हैं। ३५।

सदामननशीलता को मुनित्व गुण कहते हैं। ३६। आलस्य और असावधानता के अभाव को अप्रमत्तता गुण कहते हैं। ३७। जिनका चित्त किसी से लक्षित नहीं होसके कि यह कैसे हैं, उनके उस स्वभाव को गम्भीरता गुण कहते हैं। ३८। महाधृति के धारण को धैर्य गुण कहते हैं। ३९। जरामरण शोक मोह क्षुधा पिपासा के विजय को अर्थात् इन्हें अपने स्वरूप से पृथक् मानकर उसके तिरस्कार को षड्गुणजयित्व गुण कहते हैं। ४०। हृदय में सब से मित्रता रखने और बाहर समभाव रखने को मित्रत्व गुण कहते हैं। ४२। दूसरों को दुःखी देख दयार्द्र हो जाने को कारुण्य गुण कहते हैं। ४३। श्री रघुनन्दनकृपा से कवित्व विद्वत्व और सर्वसिद्धि-सम्पन्नत्व प्राप्त करते हुए अन्य किसीकी आशा न रखने को नैराश्य गुण कहते हैं। ४४। श्री रघुवरचरणानुरागी सज्जन ऐसे ऐसे करोड़ों गुणों के निधान होते हैं, जिन का शेषजी भी पार नहीं पा सकते, तो हम सरीखों की बुद्धिही कितनी, जो उनके गुणों का निरूपण करसके ; तथापि अपनी वाचाशक्ति को सफल करने के लिये संक्षेप से कुछ कह दिया गया है।

दोहा।

श्रीरघुवर वल्लभ परम, सन्त रसिक कमनीय।
तिनकेगुनगन गुरु अधिक, प्रीतम प्रिय रमनीय ॥१॥

जुगल अनन्य सरन रच्यो, श्रीरघुवरगुन सार।
तागुन के गाहक रसिक, सोऊ गुननिधि हार ॥२॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे श्रीराघवानुरागिसज्जनसद्गुणनिदर्शनो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः। ४०।

॥ इति शुभम् ॥
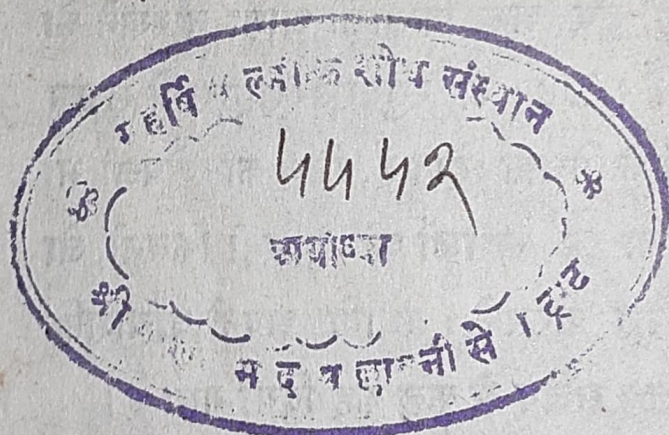
रामप्रसाद सिंह द्वारा खड्गविलास प्रेस, पटना में मुद्रित।